अग्रवाल-इतिहास-परिचय

संग्रहकर्त्ता, सम्पादक, प्रकाशक—

बालचंद मोदी

१८०, हरिसन रोड, कलकत्ता

प्रथमवार] —चैत्र शुक्ला १ सं० १९७ वि० [मूल्य जातीय प्रेम

अग्रवाल-इतिहास-परिचय

प्रस्तावना

मैं अपनी इस अग्रवाल जाति का इतिहास जानने का यत्न बहुत दिनों से कर रहाथा। इस संबन्ध में बहुत सी सामग्री भी एकत्र की थी, परन्तु खेद है कि, एकतृत समाग्री में से जो समय समयपर भाटों द्वारा प्राप्त किया हुआ बड़े महत्व का अंश था वह खोगया। फिर भी जो नोट मैंने कर रखे थे उनके तथा प्राप्त कइ एक पुस्तकों, छोटे मोटे लेखों, प्रचलित प्रथा और जनश्रुतियों के आधार परही मैंने यह छोटी सी पुस्तक लिखी है। अखिल भारत वर्षीय मारवाड़ी अग्रवाल महासभाके तृतीय महा अधि वेशन के सन्मुख इसे उपस्थित करने की प्रवल इच्छा से इसे प्रकाशित करने में मुझे बहुत ही शीघ्रता करनी पड़ी है। एकतो यह ऐतिहासिक विषय, उप कारणों का अभाव, पुस्तक लिखने के अभ्यास की कमी आदि कई एक बातें ऐसी हैं जिनसे मुझे पूर्ण आशङ्का है कि इसमें अनेक त्रुटियां रह गई होंगी। परन्तु आशा है कि सहृदय पाठक हंस क्षीर नीर निवेकन्यायैसे इसके सार भाग को ग्रहण करें गें।

यद्यपि यह अग्रवाल जातिका सर्वाङ्ग पूर्ण इतिहास नहीं है, परिचय मात्र है, इस लिये अवश्य यह छोटीसी पुस्तक इतिहास ग्रन्थ होने का दावा नहीं कर सकती, तथापि मेरायह विश्वास है

कि, ज्ञातिके विषय में कुछ न जनाने की अपेक्षा इसमें बहुतसी ऐसी बातें मिल जायगी जो कि, जातीय गौरव के भावों को प्रस्फुटित कर सकेगी।

मुझे यहभी विश्वास है कि, पहले प्रकरणमें जिन पुस्तकोंके नाम मैंने बतायें हैं वेपुस्तकें संग्रह कर मंथन की जायगी तो निश्चयही सर्वाङ्ग पूर्ण इतिहास बन सकेगा।

यहांपर यह कह देना भी बहुत जरूरी है कि इस पुस्तकके लिखने में "दैनिक भारत मित्र" के सुयोग्य सम्पादक मेरे परम श्रद्धेय मित्र पं० लक्ष्मण नारायणजी गर्दे यदि सहायक न होते तो शायदही यह पुस्तक इस रूपमें प्रकाशि होती। उन्हों ने मुझे जो सहायता दी है उनका मैं बड़ा भारी आभार मानता हूं।

१८० हैरीसन रोड
कलकत्ता
चैत्र शु० १ सं० १८७? वि०

जातीय-सेवक
बालचन्द्र मोदी

54
1815

अग्रवाल-इतिहास-परिचय।

इतिहास और उसके साधन।

संसारमें कौन ऐसा मनुष्य होगा जिसे अपने पूर्वपुरुषोंके चरित्र और पराक्रम जाननेकी इच्छा न हो? मनुष्यमें स्वभावतः ही यह जिज्ञासा होती है और जिज्ञासासे ही ज्ञानका साधन आरंभ होता है। इसीलिये ग्रन्थ लेखनकी प्राचीन परिपाटीके अनुसार ग्रन्थके आरंभमें ही जिज्ञासाका स्पष्ट निर्द्देश रहता है—आज हम अग्रवाल जातिके इतिहासका जो परिचय प्राप्त करना चाहते हैं उसका भी कारण जिज्ञासा ही है—हम यह जानना चाहते हैं कि अग्रवाल जातिके पूर्वपुरुष कौन थे। वे कैसे पराक्रमी थे और उन्होंने किस प्रकार अपना नाम अजर अमर कर रखा है। इतिहासका एक हेतु जिज्ञासा है। परन्तु केवल यही नहीं और भी है।

अपने पूर्वपुरुषोंकी विमल चरित्र गाथा सुननेसे चित्तको हर्ष होता है और इसलिये मनकी प्रसन्नता भी इतिहासका दूसरा उपयोग माना गया है। परन्तु मनकी प्रसन्नताका और भी उपाय हैं। उपन्यास और नाटकसे भी मनका रंजन होता है। तमाशोंसे भी दिल बहलाता है। विषय सुखसे भी क्षण भर चित्तको आनन्द होता है। परन्तु इतिहास ऐसे क्षणिक सुखका

साधन नहीं है। इतिहास वह साधन है जिससे पूर्वपुरुषोंके दर्शन होते हैं, और उनके चरित्र यह बतलाते हैं कि हमने तुम्हारे लिये क्या किया है और आगे तुम्हे क्या करना चाहिये। किसी समाजका इतिहास उस समाजकी गतिका चित्र होता हैं जिससे यह मालूम होता है कि वह समाज किस स्थानसे किस रास्ते कहांतक पहुंचा है। इतिहासमें समाजके जीवनकी बातोंका अनुभव इकट्ठा हुआ रहता है जो पिछली बातें बतलाकर आगे-वालोंको सचेत और सावधान करता है। इतिहास एक प्रदीप है जो आगेका मार्ग दिखलाता है। एक अत्यन्त सुप्रसिद्ध ग्रन्थ-कारने कहा है कि जिस जातिका पूर्वेतिहास कुछ नहीं है उसका भविष्य भी अन्धकारमय है और जिस जातिका पूर्वेतिहास है उसका भविष्य भी बहुत भव्य है। इसका कारण यही है कि इतिहास जातिके जीवन मार्गका पथप्रकाशक प्रदीप है जो अपने प्रकाशसे चित्तको आह्लादित कर मार्ग दिखलाता रहता है। जो जाति इतिहासके प्रकाशमें आगे बढ़ती है वही अग्रसर होती है। पर जिसके जीवनमार्गमें कोई ऐसा प्रकाश नहीं है वह मार्ग भ्रष्ट होकर भटकने लगती है अथवा यों कहिये कि जिस जातिके खड़े होनेके लिये इतिहासकी आधार भूमि ही नहीं है, वह इस जीवन संग्राममें ठहर नहीं सकती, क्योंकि ठहरनेकी जगह तो इतिहास है। इतिहास पूर्व पुरुषोंका सञ्चित किया हुआ पुण्यबल है और यह इतिहास जिस जातिका जितना प्राचीन होता है उतना ही उसका पुण्यबल अधिक होता है

जिसका जितना ही पुण्यबल होता है उसका भविष्य भी उतना ही उज्ज्वल होता है। यही पुण्यबल—यही इतिहास उन्नतिका साधन है। इस प्रकार इतिहासके उपयोग अनेक होनेपर भी उसका मुख्य हेतु भावी पीढ़ियोंकी उन्नति ही है। इसी दृष्टिसे इतिहास लिखा जाता है और इतिहास जाननेकी जो जिज्ञासा मनुष्यमें स्वभावतः होती है। उसका कारण भी यही है।

अग्रवाल जातिके इतिहासका भी यही हेतु है यह कहनेकी आवश्यकता नहीं। अबतक कोई ऐसा ग्रन्थ नहीं बना है जिसे आद्यन्त पढ़कर हम अग्रवाल जातिका इतिहास जान जायं। पर जिज्ञासा ही ज्ञानका साधन है और यह जितनी प्रबल होती है, ज्ञानकी भी उतनी ही वृद्धि होती है। इतिहासके साधन ढूंढनेसे मिलते हैं और इन साधनोंको एकत्र करनेसे ही इतिहास बनता है। सबसे पहले यह ध्यानमें रखनी चाहिये कि अग्रवालोंका इतिहास भारतके इतिहासका हो एक अङ्ग है ओर भारतके इतिहासका कलेवर इतना बड़ा है कि उसका विस्तार कहांतक है यह बतलाना बड़ा ही कठिन है। क्योंकि इतिहास बड़ा ही व्यापक विषय है। इसमें जातिके चरित्रकी सभी बातें आती हैं। जिस समयका वर्णन इतिहासमें हो रहा हो, उस समय लोगोंके आचार विचार क्या थे, खानपान और रहन-सहन क्या थे, किस विद्याकी प्राधान्य था और उसका कितना प्रचार था लोगोंकी सामाजिक मानसिक और नैतिक अवस्था क्या थी, इत्यादि चरित्रकी सभी बातें इतिहासमें आती हैं और इन सब बातोंका

वर्णन जिस ग्रन्थमें किया जाता है उसीको इतिहास कहते हैं। केवल वंशावली या लड़ाइयोंके वर्णनको इतिहास नहीं कहते हैं। इतिहास जातिके सर्वांगीन चरित्रका नाम है भारतका ऐसा सर्वांगीन चरित्र चारोंयुगोंके अथाह समुद्रमें छिपा हुआ है। ऐसे सर्वांगीन चरित्रके ज्ञानके साधानोंका विचार करनेसे राजतरंगिनी कारके साथ यही कहना पड़ता है कि—

> कोऽन्यः कालमतिक्रान्तं नेतुं प्रत्यक्षतां क्षमः
>
> कवि प्रजापतिंत्यक्त्वा रम्यनिर्माणशालिनः ॥

'सृष्टि निर्माण करनेवाले ब्रह्मा और कविको छोड़' गत कालको फिरसे नेत्रोंके सामने ला खड़ा कर देनेकी सामर्थ्य और किसमें है? तथापि मानवी बुद्धि और अनुसन्धान शक्ति जहांतक पहुंचती है वहांतक अपना इतिहास आप जाननेका प्रयत्न प्रत्येक प्रगति शीलजाति अवश्य करती है और उसीसे उसकी प्रगति भी होती है।

भारत वर्षमें किसी भी जातिके इतिहासके साधन प्रायः समान ही हैं। अग्रवाल जाति हिन्दू जातिका ही एक अङ्ग है और उसका इतिहास भी हिन्दू जातिके इतिहासका ही एक भाग है और यह भाग समस्त जातिके इतिहासमें इतना मिला हुआ है कि उसे अलग करके दिखलाना बड़ा ही कठिन है। दूसरी बात यह कि अग्रवाल जाति हिन्दू जातिके वृक्षकी एक शाखा है और यह शाखा अवश्य ही हिन्दू जातिके प्राचीनत्वके विचारसे

अर्वाचीन है और इसलिये अग्रवालजातिका इतिहास मूल हिन्दु जातिका ही इतिहास है अर्थात् अग्रवाल जातिके इतिहासका परिचय पानेके पूर्व हिन्दू जातिका इतिहास जानना आवश्यक है। परन्तु जबतक हिन्दू जातिका सर्वांगपूर्ण और क्रमबद्ध इतिहास नहीं बनता तबतक अग्रवाल जातिका इतिहास भी अपूर्णही रहेगा। तथापि जो कुछ इतिहास मिलता है उसी को जानकर हम आगे बढ़ें तो यह भी "अकरणान्मन्द करणं श्रेयः (कुछ नहीसे कुछ तो अच्छा)" के न्यायसे उचित और आवश्यक है।

अब यह सोचें कि अग्रवालोंके स्वतन्त्र इतिहासके साधन क्या हैं। समस्त हिन्दू जातिका इतिहास तो मूल है ही। अब इसके बाद यह मालूम होता है कि संस्कृत पाली और प्राकृत ग्रन्थोंको देखनेसे इतिहासकी बहुत कुछ सामग्री मिल सकती है। सबसे पहले यही प्रश्न होता है कि अग्रवाल जाति की सृष्टिका काल कौनसा है—कबसे यह जाति एक स्वतन्त्र वैश्य जाति हुई है अथवा इस जातिके मूल पुरुष जो अग्रसेन हुए वे किस समय हुए। परन्तु इस प्रश्नका जो उत्तर मिलता है वह इतिहास जिज्ञासुकी जिज्ञासाको तृप्त नहीं करता है। सम्भव है कि प्राचीन ग्रन्थोंके मन्थनसे इसका उत्तर निकल आये, सम्भव है कि यह प्रमाणित हो कि महाराज अग्रसेन त्रेता युगमें हुए हों अथवा यही सिद्ध हो कि कलिमें ही हुए हों। इन ग्रन्थोंसे उनके समयपर प्रकाश भी पड़ सकता ह और

यह मालूम हो सकता है कि उस समय हिन्दू जातिकी सभ्यता का अन्तरङ्ग और बहिरङ्ग क्या था, आचार विचार क्या थे, वर्णाश्रम बन्धन किस प्रकारका था। इसी प्रकार अगरोहा अथवा ऐसे ही अन्य स्थानोंमें जानेसे शिलालेख अथवा ताम्रपत्र मिलें जिनसे ये बातें मालूम हों। इसके अतिरिक्त अग्रवाल वंशके सम्बन्धमें यत्र तत्र अनेक हस्त लिखित ग्रन्थ हैं ऐसा कहते हैं। भाटोंके पास भी वंशावलियां मौजूद हैं जिनके परस्पर-विरोधमेंसे भी सत्यासत्यका निर्णय किया जा सकेगा। इसके अतिरिक्त प्रचलित प्रथाओंसे भी इतिहास जाननेमें बड़ी मदद मिलती है। अग्रवालोंकी वर्तमान प्रथाओंमें कई एक बड़ी रहस्यमय हैं और उनमें ऐतिहासिक बातें छिपी हुई मालूम होती हैं। जिन हस्तलिखित और मुद्रित ग्रंथ हमें मालूम हुए हैं उनकी तालिका नीचे देते हैं—इनमें कितने ही ग्रन्थ हमें प्राप्त हुए और कितनोंको प्राप्त करनेकी चेष्टा हो रही है।

(१) भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र लिखित अग्रवालोंकी उत्पत्ति।

(२) अग्रवाल उत्पत्ति—लाला रामचन्द्र, अजमेर अग्रवाल सभा।

(३) वैश्य अग्रवाल इतिहास (उर्दू)—अग्रवाल राजवंश सभा मेरठ।

(४) महाराज अग्रसेनका जीवन चरित्र—हमदर्द हिन्द प्रेस, मेरठ।

(५) अग्रपुराण—जसराज भाट लिखित जो, कहते हैं अंगरोहेके भांटोंके पास है।

(६) अग्रयश—कृष्णार्यतराय सिन्धपत रत्नगढ़ (विलासपुर) के यहां है।

(७) रायन अगरोहा—
(८) कंसासुर युद्ध—
} ये दोनों पुस्तकें अजयगढ़के प्रेमसुख शुक्लके पास हैं।

(९) अग्रवालवंश कौमुदी—लाला सुखानन्द मालवी कृत।

(१०) संक्षेप वृतान्त मुंशी अनूपसिंह लिखित।

(११) मुख्तसिरहालात् महाराजा अग्रसेन" जुफर प्रेस मुरादाबादसे प्रकाशित।

(१२) "अग्रवंश प्रकाश"

(१३) "खैर खाहे वैश्य" मासिकपत्र सन् १८८५ मई मासकी संख्यामें मुन्शी रामनाथ साहब लिखित लेख जो कि ६-७ वर्षों की खोजसे लिखा गया था।

(१४) कलीमखान सूर्य्यवंश (प्रेमदत भाटके पास है)

(१५) कवीवर तुलसीरायकी कथा" जो कि संवत् १९१३ वि० में कही गई थी वह सम्वत् १९६६ में मुरादाबादमें छपी है।

(१६) सिकन्दर आजमका जीवन चरित्र

(१७) "राजा समरजीत" (धारानगरीका वृतान्त)

(१८) काश्मीर जम्बूका स्वतन्त्र इतिहास

(१९) राजतरंगणी.

(२०) बंशावली गीठाकुर और विशुन ठाकुर

(२१) वर्तमान अग्राधात और अग्रहरी राजपूतोंकी वंशावली।

(२२) ब्रह्मचर्य्य वर्ण उत्पत्ति" पं० रामगोपाल लाहौर

(२३) "वर्ण उत्पत्ति" जिसका सप्तम्, दशम्, एकादशम, तीन भाग जीर्ण अवस्थामें रामधन ब्राह्मण चंगलपट मद्रासके पास है।

(२४) "कारनामय बखतयार खिलजी" (फारसी) जो कि रत्न-साहु सूफी नीमाहड़ रियास्त टोंकके पास है

"(२५) सूर्य्य सिद्धान्त" जिससे समय निर्धारित करनेमें सहायता मिलेगी।

(२६) महाभारत"

(२७) "भविष्योत्तर पुराण"

(२८) "लक्ष्मी व्रत कथा"

(२९) "वरर्णावली" महाराज पृथ्वीराज तथा चन्दभांट लिखित इसके कई भाग महाराज रीवांके लाईब्रेरीमें हैं

(३०) "वंशावली राजा मानमोरी" मोरामल इसी कुलमें हुआ है यह वंशावली राणा उदयपुर चित्तौड़गढ़के प्राचीन पुस्तकालयमें तथा कृष्णशास्त्री चितौड़गढ़के पास भी बताई जाती है।

(३१) अग्निपुराण,,

(३२) विक्रम जीवन चरित्र

(३३) राजा चेतराम व रत्नसिंहकी वंशावली जो कि मुकलमपुरके रानाके पास बताते हैं।

(३४) "ब्रह्मचर्य गुप्त" (संस्कृतमें) नन्द्र करण नामके व्यक्तिके पास मद्रासमें है।

(३५) "महाराजा जयसिंहका निर्णय" वैश्योंमें अग्रवाल क्यों मुखिया है इस विषयका निर्णय किया गया था। जैपुर राज पुस्तकालय।

(३६) जागों और भाटोंके पासके प्राचीन हस्त लिखित खुदरा २ लेख और उनकी मौखिकवार्त्तालाप।

(३६) जनश्रुतिः—

(३७) सिला लेखादि ताम्रपत्र।

(३८) ब्रह्मचारी ब्रह्मानन्द और अवधबिहारीजीके लेख और कविता दि

(३९) अग्रवाल कुल भूषण महाराजा नर्शीपुरका प्राचीन पुस्तकालय।

(४०) श्रीनाभाकृत "भक्तमाल"

(४१) पुरानोंमें रंकण और त्रिलोचन वैश्यकी कथा तथा बसु महात्म्य।

(४२) रंकण वंकणकी जीवन चरित्र जो कि गणेशदास साधु व्यावरने संग्रह किया है।

(४३) अग्रोहेके खण्डहर और उसकी खुदाई।

(४४) अग्रोहेके खण्डहरोंमें मिले हुये सिक्के जो कि बाबू देवी-बकसजी सराफ मण्डवाके पास है।

(४५) बादशाह हिमायू और हेमचन्द्रका वृतान्त।

(४६) बादशाह अकबर और मध्धुसाह

(४७) जैनियोंके हस्त लिखित प्राचीन ग्रन्थ, इनसे बहुत कुछ पता चलनेका अभास मिली है।

(४८) सिरोही राज्यका इतिहास।

(४६) हिन्दी विश्वकोष बांकबाजार विश्वकोष लेन नं० ६ में मिलता है।

(५०) वैश्य कुलभूषण इतिहास 'कल्पद्रुम' गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास वेंकटेश्वर प्रेस कल्याण बम्बईमें मिलता है।

(५१) प्राचीन इतिहासकी सामिग्री लेखक पं० गौरीशङ्कर हीराचन्द ओझा वैदिक यन्त्रालय अजमेर।

(५२) जाति भास्कर, लेखक पण्डित ज्वाला प्रसादजी मिश्र वेंकटेश्वर प्रेस बम्बईमें छपा है।

(५३) ऐतिहासिक ग्रन्थ माला, वैदिक यन्त्रालय अजमेर।

(५४) नेपालका प्राचीन इतिहास खड्ग विलास प्रेस बांकीपुर।

(५५) अग्रवाल वैश्योत्कर्ष।

(५६) मि० Sherring शेरिंग मि० Sir Risly रिजली मि० Crooke क्रूक, सर हेनरी ईलियटका शब्द संग्रह और मि० ह्यूमकी खोजमें भी अग्रवाल जातिका वर्णन मिलता है।

(५७) रानीगंज निवासी श्रीमान् बाबू जगन्नाथजी झुनझुनुवाले संग्रहीत उपकरण।

इन सब साधनोंको मथ करें अग्रवाल जातिका यदि इतिहास लिखा जायगा तो वह एक अपूर्व ग्रन्थ होगा इसमें सन्देह नहीं। ऊपर जिन ग्रन्थोंके नाम दिये गये हैं उनमेंसे अनेकोंके नाम बहाल सिंह कृत उर्दू "अग्रवाल इतिहास" में आधारके

तौरपर निर्दिष्ट हुए हैं और यह मालूम होता है कि "अग्रवाल इतिहास" के लेखकने इन ग्रन्थोंको देखा है। अग्रवाल भूषण भारतेन्दु जीने जो "अग्रवालोंकी उत्पत्ति" लिखी है उसका आधार उन्होंने परंपरागत "जनश्रुति, प्राचीन लेख और भविष्य पुराणान्तर्गत श्री महालक्ष्मी व्रतकी कथा बताया है। इन दोनों पुस्तकोंको भी हमने देखा है। इनके अतिरिक्त अनूपसिंह राजवंशी कृत "संक्षेप वृत्तान्त" सुखानंद मालवी नागवंशी कृत "अग्रवाल वंश कौमुदी" अजमेर अग्रवाल सभा द्वारा प्रकाशित "अग्रवाल उत्पति" और मुरादा बाद वासी बांके लाल कृत "मुख्तसिर हालात महाराज अग्रसेन" आदि छपी हुई पुस्तकें भीहमने देखी हैं। इत्यादि इन सब पुस्तकोंके देखनेके पश्चात् हमें यही कहना पड़ता है कि यद्यपि इन लेखकोंने बड़े परिश्रमके साथ अग्रवालोंके इतिहासका दिग्दर्शन किया है तथापि यह दिगदर्शन ही है, इतिहास नहीं और इतिहासका काम अभी बाकी ही है। इन पुस्तकोंसे अग्रवालोंके इतिहासका जो परिचय मिलता है वह अवश्य ही उत्साह और जिज्ञासाकी बढ़ानेवाला है।

इन पुस्तकोंमें परस्पर बहुत मत विरोध है; अनेक स्थानोंमें घटनाओंका भी विरोध है। इससे सत्या—सत्यका निर्णय करके इन्हीं पुस्तकोंसे प्राप्त हो सकनेवाला इतिहासका परिचय समस्त जातिको करादेनेका काम भी महान् न होने पर भी "अकरणान्मन्द करणं श्रेयः" के न्यायसे समाजको अवश्य स्वीकृत होगा। हमने तो केवल इस कंटकाकीर्ण सामग्रीको एकत्र करके उसे इस

रूपमें समाजके सामने रखनेका यत्न किया है अग्रवाल जातिके संबंधमें अबतक जो बातें उपलब्ध हुई हैं वे मालूम हो जायं औरअपना इतिहास जाननेकी जिज्ञासा जातिमें उत्पन्न हो। अर्थात् यह इतिहासका दिग्दर्शन या साधारण परिचय करा देनेका यत्न है।

अग्रवाल जन्मतः वैश्य नहीं थे। अपने गुण कर्मके कारण हीं वैश्य कहलाते हैं इस बातका परिचय मिलता है। अग्रवालोंके मूल पुरुष अग्रसेन एक महान् प्रतापी क्षत्रिय राजा थे। उनके वंशमें अनेक इतिहास प्रसिद्ध पुरुष हुए हैं। राज बंश और नाग बंश दोनों ही उन्हींके बंशज हैं। बंश निर्णयके प्रसंगमें कुछ रहस्यमय बातें हैं, जैसे राजा बासककी कन्याओंका रातके समय सर्पिणी हो जाना–इत्यादि। यह भी परिचय मिलता है कि अगरोहा अग्रवालोंके अत्यन्त गौरवके समय प्रधान वासस्थान था। अब यह अगरोहा उजड़ गया है पर प्राचीन गौरवके स्मृति चिन्ह अबतक बाकी हैं। पूरा इतिहास यद्यपि अभी विद्यमान नहीं है तथापि यथा प्राप्त निर्विवाद इतिहास क्रमबद्ध रूपसे सामने रखनेका यत्न किया जा सकता है और प्राचीन तथा अर्वाचीन अग्रवालोंकी परस्पर तुलना करनेसे उस इतिहाससे बहुत कुछ शिक्षा मिल सकती है इस प्रकार अग्रवाल इतिहासका परिचय आगेके प्रकरणोंमें दिया जायगा।

(२)

अग्रवाल जातिकी उत्पत्ति

सबसे पहले अग्रवाल जातिकी उत्पत्तिके विषयमें कुछ लिखना आवश्यक है। "अग्रवाल उत्पत्ति" के लेखकने चार प्रमाण विकल्प रूपसे दिये हैं—(१) जो वैश्य अगर बेंचते थे वे अगर बेंचनेके कारण अगरवाल कहलाये; (२) महाराज अग्रसेन ऐसे प्रतापी राजा थे कि उनके बाद उन्हींके नामसे उनका वंश चला; (३) अगरोहेमें रहनेके कारण इनका नाम अगरोहे वाले और फिर अगरवाले हुआ; (४) अग्र अर्थात् पूर्व कालवत् सद्धर्माचरण करनेके कारण इन्हें अग्रवालकी संज्ञा प्राप्त हुई। इनमेंसे पहला और चौथा कारण महज खींचातानी या जबर्दस्तीका स्पष्ट ही मालूम होता है इसलिये हमें उसका विचार करनेकी आवश्यकता जान नहीं पड़ती। ये दोनों कारण कारणोंकी केवल संख्या बढ़ानेके लिये हैं। इतना ही कहना पर्याप्त है। दूसरा और तीसरा कारण विचारणीय है। यदि हम यह स्वीकार करलें कि महाराज अग्रसेनके नामसे ही अग्रवाल वंश चला है तो तीसरे कारणके विचारकी भी आवश्यकता नहीं रहती। परंतु वंशका नाम पूर्व पुरुषके नामसे ही जैसे चलता है वैसे ही स्थानके नामसे भी चलता है, जैसे चूरूके रहनेवाले चूरूवाले इत्यादि। इसलिये अगरोहेके नामसे अग्रवाल नाम पड़े तो यह हो सकता है परंतु ऐतिहासिक दृष्टिसे इसका विचार करना चाहिये। अगरोहेसे

अग्रवाल हुए यह मानलें तो यह प्रश्न होता है कि अगरोहेका नाम अगरोहा कैसे हुआ? यदि महाराज अग्रसेनके नामसे अगरोहा बसा तो अग्रवाल बंशका भी संबंध सीधे उन्हींसे न लगा कर अगरोहेका सहारा लेनेकी क्या जरूरत है? दूसरी बात यह कि अगरोहा कब बसा—महाराज अग्रसेनने ही इसे बसाया या उनके नामसे यह पीछे बसा, इस विषयमें मतभेद है। "मुख्त सर हालात महाराज अग्रसेन" के लेखकने भाटोंके मुंह सुनी कथाके आधार पर लिखा है कि अगरोहा अग्रसेनके बंशजोने बसाया। तीसरी बात यह कि, भारतेन्दुजीके कथनानुसार, महाराज अग्रसेनने उत्तरमें पंजाबसे लेकर दक्षिणमें आगरे तक अपना राज्य विस्तार किया था और इस राज्यमें सर्वत्र ही अग्रवाल बसते थे। इन बातोंसे यह स्पष्ट हो जाता है कि अग्रवालोंके मूल पुरुष महाराज अग्रसेनके नामसे ही अग्रवाल वंश चला है।

महाराज अग्रसेन बड़े प्रतापी क्षत्रिय राजा हुए। इनके प्रतापका वर्णन प्रसंगानुसार आगे आवेगा। इससे पहले यह देखलें कि इनके जन्मकालके संबंधमें किसका क्या मत है। "अग्रवाल बंश कौमुदी कारने लिखा है कि महाराज अग्रसेनका जन्म त्रेता युगके प्रथम चरणमें हुआ। "जाति भास्कर" में इस संबंधका एक पुराना दोहा भी दिया हुआ है—

बद मिगसर शनि पंचमी, त्रेता पहले चर्ण।
अग्रवार उत्पन्न भये, सुनभाखी शिवकर्न॥

अर्थात् मार्गशीष बदी पंचमी शनिवारके दिन "अग्रवार" उत्पन्न हुए ऐसा शिवकर्ण कवि सुनाते हैं पर उस दिन "अग्र-वार" उत्पन्न हुए या अग्रनाथ इस प्रश्नका उत्तर देनेके लिये कविजी मौजूद नहीं है। परंतु इसका उन्होंने कोई खास प्रमाण नहीं दिया है अंनूपसिंह राजवंशीने लिखा है कि इनके जन्मके समय युधिष्ठिर महाराजके राज कालको १५५६ वर्ष बीत चुके थे अर्थात् इन दो मतोंके बीच पूरे एक युगका फासला है। "मुख्तसर हालात महाराज अग्रसेन" के लेखकका कहना है कि महाराज अग्रसेनका जन्म आजसे ७४३७ वर्ष पहले हुआ। यह पुस्तक १६१० में लिखी गई है इसलिये इस हिसाहसे अब ७४४७ वर्ष हुए। इसमें कौन मत ठीक है और कौन गलत इसका निश्चय करना भावी इतिहासकारका काम है। अभी इतनी सामिग्री उपलब्ध नहीं है जिससे अग्रसेनका जन्मकाल निश्चित किया जा सके। परन्तु "वैश्य अग्रवाल इतिहास" के लेखकने महाराज अग्रसेनकी वंश शाखाओंका जो वर्णन किया है उसमें महाभारतकालीन कंस, जरासंध, शिशुपाल आदि प्रसिद्ध पुरुषों-के नाम आये हैं। लिखा है कि महाराज अग्रसेनके पड़पोते रण-वीरजीतने मथुराके राजा कंसके साथ युद्ध किया था। कंस-रण-वीरजीत युद्धकी कथा यद्यपि श्रीमद्भागवत, हरि विजय अथवा महाभारतमें नहीं है और यह कथा भी अप्रसिद्ध है तथापि अजय गढ़के प्रेम सुख शुक्लके पासवाले कंसासुर युद्धके आधारपर लिखी हुई यह घटना यदि सत्य हो तो यह निर्विवाद हो जाता

है कि महाराज अग्रसेन कंसके चार पीढ़ी पहले हुए और कंस-का काल यदि द्वापरका शेष याने ५०२१ वर्ष निश्चित होता है। इसमें चार पीढ़ीका चार सौ वर्ष बढ़ा दें तो महाराज अग्रसेनका काल ५४०० वर्षसे पहलेका प्रमाणित होता है।

अग्रवाल वैश्योंकी उत्पत्तिके प्रकरणमें

अब दूसरी बात यह भी देख लेना चाहिये कि अग्रसेन तो क्षत्रिय थे, फिर अग्रवाल जाति वैश्य क्यों कहलाती है। इस विषयमें भी भिन्न भिन्न बातें सुननेमें आती हैं।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्रने अग्रसेनके मूल पुरुष धनपालको ही वैश्योंमें गिना है। पर फिर धनपालके पुत्र शिवके वंशमें विश्य नामका कोई राजा हुआ जिसका राज जम्बूद्वीपमें और उसी विश्यसे वैश्य हुए यह भी भारतेन्दुजीका कहना है। पर यदि विश्य ही वैश्योंके मूल पुरुष होते या विश्य शब्दसे वैश्य शब्दकी उत्पत्ति हुई होती तो विश्य राजा उतने ही प्रसिद्ध होते जितने स्वयं भगवान मनु हैं।

एक मत यह है कि अग्रसेनके पौत्रोंने ऋषियोंकी आज्ञासे जीवहिंसासे विरत होकर क्षात्र धर्म छोड़ वैश्य धर्म ग्रहण किया, तबसे अग्रसेनके वंशवालोंसे क्षत्रियोंका रक्तसंबंध छूट गया और ये वैश्य कहलाने लगे तथा इनका विवाह संबंध इसी नवीन वैश्य जातिके अन्दर होने लगा। इसपर कईप्रश्न उठते हैं, जैसे जिन ऋषि-योंने जीव हिंसासे विरत होनेका जो उपदेश दिया वे ऋषि जैन

संप्रदायके आचार्य तो नहीं थे और उन्होंने उस उपदेशसे जैन धर्मकी दीक्षा तो नहीं दी? दूसरा मत यह है कि अग्रसेनने १७ यज्ञ किये और जब १८ वां यज्ञ करनेलगे तो उनको जीव हिंसासे ग्लानि हो गयी और उनके राजगुरु गर्ग मुनिने उन्हे वैश्य धर्म ग्रहण करनेका उपदेश दिया। भारतेन्दुजीने भी यह लिखा है कि महाराज अग्रसेनने देवीहिंसा बन्द की। फिर यह भी एकमत है कि अगरोहेका जब ध्वंस हुआ तब वहांसे लोग भाग कर दूर जा बसे और जीविका निर्वाहके लिये कृषि, व्यापार" आदि करने लगे और "अपनेको अग्रवाल वैश्य वंशी" कहने लगे। इस विषयका निर्णय भी पर्याप्त सामग्रीके अभावसे नहीं हो सकता है। परंतु इतनी बात तो निर्विवाद है कि अग्रवाल जाति जन्मतः क्षत्रिय है और गुण कर्मसे ही वैश्यत्वको प्राप्त हुई है। आज भी अग्रवालोंके यहां परम्परासे छत्रचामरका जो अधिकार चला आया है यह भी इस बातका साक्षी है और अग्रसेनके आगे कई पीढ़ियों तक इनके खानदानमें राजपाटका पूर्ण अधिकार था यह बात भी स्पष्ट देख पड़ती है। अग्रवाल वैश्य जातिका इतिहास वैश्य कर्मका ही इतिहास नहीं है, यही नहीं, बल्कि इस जातिका इतिहास प्रधानतः क्षात्रधर्मका ही इतिहास है।

अन्तमें एक बात और लिख देनी है। वह यह कि अग्रसेनके नामसे ही यद्यपि अग्रवाल वंश चला है और अग्रसेन ही इनके मूल पुरुष हैं तथापि अग्रसेनके जो सन्तति हुई उसकी उत्पत्ति

यज्ञसे हैं और यज्ञोंसे उत्पन्न पुत्रोंके गोत्र भी उन ऋषियोंके नामसे हैं। जिन्होंने ये यज्ञ कराये थे।

पूर्वजोंका-वृत्तान्त

अग्रवालोंके मूल पुरुष अग्रसेनके पुरखोंकी परंपरा पूरी नहीं मिलती। जो मिलती है उसमें भी संदिग्धता है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्रजीने पुराण ग्रन्थोंके आधार पर लिखा है कि, "पहला मनुष्य जो वैश्योंमें हुआ उसका नाम धनपाल था।" इन्हीं धनपालके वंशमें अग्रसेन हुए हैं। परंतु धनपाल स्वयं वैश्य थे यह कहांतक ठीक है यह एक सोचनेकी बात है। यदि धनपाल वैश्य ही थे तो अग्रसेन अमुक कारणसे वैश्य हुए यह कहनेकी आवश्यकता ही नहीं रहती। परंतु यदि धनपाल वैश्य होते तो ब्राह्मण उन्हें राजपर क्यों बिठाते? प्राचीन समयमें आजकलकी तरह वैश्य प्रधान राज्य नहीं था। क्षत्रिय ही राजा होते थे। परंतु भारतेन्दुजीके कथनका अभिप्राय दूसरा भी हो सकता है जो उनके शब्दोंसे स्पष्ट प्रकट नहीं होता। संभव है कि उनके कहनेका यह मतलब हो कि वर्तमान अग्रवाल वैश्य जिस वंशके हैं उस वंशके पुरखा धनपाल थे। आगे चलकर स्वयं भरातेन्दुजी ने यह भी लिखा है कि विश्य राजाके नामसे वैश्य हुए पर यह भी कवि कल्पना ही मालूम होती है। तात्पर्य अग्रवालोंके पूर्व पुरुष क्षत्रिय हो थे और अग्रवालोंका घराताराज घराना है जिसने समयके फेरसे वैश्य वृत्ति धारण की है। अस्तु

भारतेन्दुजीने जो अनुसन्धान किया उसके अनुसार धनपालको ब्राह्मणोंने प्रताप नगरका राज्य प्रदान किया था। धनपालके आठ पुत्र और एक कन्या थी। कन्याका नाम मुकटा था और याज्ञवल्क्य ऋषिके साथ इसका विवाह हुआ था। इस कन्याके अतिरिक्त धनपालके आठ पुत्र थे जिनके नाम शिव, नल, अनल, नन्द, कुन्द, कुमुद, वल्लभ, और शेखर हैं। अश्वविद्या शालि होत्रके आचार्य विशाल राजाने अपनी आठ बेटियोंका इन आठ पुत्रोंसे व्याह दिया। उन आठ बेटियोंके नाम ये हैं— पद्मावती, मालती, कान्ति, शुभ्रा, भव्या, भवा, रजा और सुन्दरी।

धनपालके नल नामक जो पुत्र थे वे योगी और दिगंबर होकर बनको चले गये और सात पुत्रोंने "सात द्वीपोंका" अधिकार पाया और "पृथ्वीमें इनका वंश फैल गया। जम्बू द्वीपमें विश्व नामक राजा हुआ। उसके वंशमें सुदर्शन राजा हुआ जिसके दो स्त्रियां थीं। सुदर्शनका पुत्र धुरन्धर हुआ। इसका परपोता समाधि और समाधिके वंशमें सुप्रसिद्ध मोहनदास हुआ जिसने कांपेरी तटपर श्रीरंगनाथ जीके अनेक मन्दिर बनवाये। मोहनदासका परपोता नेमिनाथ हुआ जिसने नेपाल बसाया। नेमिनाथका पुत्र वृन्द हुआ जिसने श्रीवृन्दावनमें यज्ञ करके वृन्दा देवीकी मूर्त्ति स्थापित की। इसके वंशमें गुर्जर बहुत प्रसिद्ध हुआ जिसने गुजरात बसाया। इसके वंशमें हीर नामक राजा हुआ जिसके रंग आदि सौ पुत्र थे। रंगने राज्य किया और शेष पुत्र अपने बुरे कर्मोंसे शूद्र हो गये। भारतेन्दुजी लिखते हैं, "तबके

बलसे फिर इन लोगोंने वंश चलाये जिनके वंशके लोग वैश्य हुए पर उनके कर्म शुद्रोंकेसे थे।" रंगका पुत्र विशोक, विशोकका पुत्र मधु और मधुका पुत्र महीधर हुआ। महीधर महादेवजीका भक्त था और उसने महादेवको प्रसन्न करके अनेक वर पाये। इसी वंशमें वल्लभ नामका राजा हुआ और उसके घरमें बड़ा प्रतापी अग्रराजा उत्पन्न हुआ। इसको अग्रनाथ और अग्रसेन भी कहते थे।"

भारतेन्दुजीके सिवाय और किसी लेखकने एक प्रकारसे वंशावली दी ही नहीं है मुख्तसर हालात अग्रसेन"के लेखकने पूर्वज परंपरामें ये नाम गिनाये हैं—"रामचन्द्रजीकी सन्तानका वर्णन—कुशा, धुंधमार, पौदालक, धर्माप, ऐसत, मुग्ध, पुंडरीक, देवायंग, कुशल, वर्णवाह,. अग्निवरण)" इतना लिखकर फिर लिखा है—"अंबरीषकी सन्तानमें जो परीक्षितका लघु भ्राता था। निम्नलिखित प्रसिद्ध राजा हुए—धूमार्क यमरक्षक, सदारक्षक, सुलभरक्षक, जीवनरक्षक, अनन्तरक्षक, सुमङ्गलरक्षक, कोषरक्षक, कर्मरक्ष, मणीरक्ष, सहस्त्ररक्ष, ब्रह्मरक्ष, प्रकाश, ताश, मयङ्कर, सोहान, चलंगद, निम्भ, परमसेन, धर्मसेन, अमरसेन, महिमन्त, सत्यमन, मधुमान, कषमंड, मयूर, भ्रमर, रहमत, श्याम, सोभाग, चूहामन, पूर्णकन्द, विहीलोक, गजराज, हरिद्र, दधिराज, रणगाधी, महीधर, अग्रसेन।" लेखकने रामचन्द्रजीसे लेकर अग्रसेनतक खंडविखंडित वंशपरंपरा दिखलायी है। पर यह परंपरा इन्होंने कहांसे पायी है इसका कोई प्रमाण नहीं दिया

है ! इसलिये इस वंशपरंपराका देना न देना बराबर है। भारतेन्दुजीकी वंशावलीके नामोंमेंसे एक ही नाम इसमें आया है और वह नाम महीधर है। इस लेखकने पूर्व पुरुषोंके चरित्रकी भी कोई बात नहीं लिखी है। इस प्रकार भारतेन्दुजीकी दी हुई वंशावली प्रामाणिक माननी चाहिये। धनपालसे अग्रसेन तक कितनी पीढ़ियां हुई यह इस वंशावलीसे मालूम नहीं हो सकता, क्योंकि वंशावली अधूरी और बीच बीचमें खंडित है। तथापि धनपालसे कमसे कम ३०।४० पीढ़ियोंके बाद महाराज अग्रसेन हुए हैं। वंशावली खंडित होनेका कारण यह मालूम होता है कि इतिहास आजकलके ढंगसे लिखनेकी प्रथा न होनेके कारण वंशपरंपरासे केवल उन्हीं राजाओंके नाम लोगोंको याद रहे जिन्होंने अपने जीवनकालमें विशेष पराक्रम किया और बाकी नाम लोग भूल गये। अथवा यदि कोई वंशावली पहले बनी भी हो और वंशावली राज दरबारमें रखनेकी प्रथा पहलेसे है ही, तो वह वंशावली अब नहीं मिलती हैं। संभव है कि अनुसन्धान करनेसे पूरी वंशावली मिल जाय।

अभी जो वंशावली अपने सामने है वह खंडित है और उससे यह साबित होता है कि महाराज धनपालके वंशमें अग्रसेनके अतिरिक्त १८ राजा और ऐसे हुए जिन्होंने अपने समयमें कुछ विशेष पराक्रम कर अपना नाम अमर कर रखा है, क्यों कि यदि इन्होंने कोई बड़ा पराक्रम न किया होता तो इनके नाम भी औरोंकी तरह लुप्त हो जाते। इन अठारहों राजाओंके पराक्रमका वृत्तान्त

मिलना दुःसाध्य क्या असाध्य ही मालूम होता है। इनमें मोहन-दास, नेमिनाथ, वृन्द और गुर्जर ये नाम विशेष प्रसिद्ध हैं।

मोहनदास बड़े भक्त पुरुष थे। श्री रंगनाथजीके चरणोंमें बड़ी प्रीति थी। इन्होंने कावेरी नदीके तट पर श्री रंगनाथजीके अनेक मन्दिर बनवाये हैं। इन मन्दिरोंका अनुसन्धान करनेसे संभव है कि मोहनदासके संबंधमें कोई शिला लेख मिल जाय। इन्हींके परपोते नेमिनाथ हैं जिनकी यह कीर्त्ति है कि उन्होंने नैपाल बसाया। यदि नैपाल बसानेवाले 'नेमिनाथ' यही हैं तो इनके विषयमें यह बात भी मालूम हो जाती है कि यह मुनि थे, क्योंकि नैपालके इतिहासमें नैपाल बसाने वालेका नाम नेमुनि है जो एक मुनि ही थे। नैपालके इतिहासमें इस बातका उल्लेख नहीं हैं कि नेमुनि कहांसे आये थे पर अग्रवाल जातिके पुरखोंके इति-हाससे वह बात मालूम हो जाती है। संभव है कि नेमिनाथ विरक्त हो कर तपस्या करने नैपालके तपोवनमें पहुंच गये हों। इन्हीं नेमिनाथके पुत्र वृन्दका नाम भी परंपरासे चला आता है। इन्होंने वृन्दावनमें यज्ञ किया था और 'वृन्दा' देवीका मन्दिर बनवाया था वृन्दके बाद इस वंशमें विशेष प्रसिद्ध पुरुष गुर्जर नामका राजा हुआ। इसीके नामसे गुजरात बसा कहा जाता है। संभव है कि गुजरातके इतिहाससे इसका अधिक पता चले।

इसी प्रकार अग्रसेनके पुरखोंमें धनपाल, मोहनदास नेमिनाथ, गुर्जर आदि बड़े भक्त और पराक्रमी पुरुष हुए हैं। राजा महीधर

का नाम भी प्रसिद्ध है और कहते हैं कि ये भगवान शंकरके उपासक थे। किसी किसीने लिखा है कि महाराज अग्रसेन इन्हींकेबेटे थे। मुरादाबाद वासी बांकेलाल जी लिखते हैं कि महाराज अग्रसेन महीं धरके पुत्र थे। इनकी माताका नाम भेद कुंआर था यह मन्दलोर (महोबा) के राजाकी कन्या थीं। पर कोई कहते हैं कि नहीं, इनके वंशमें वल्लभ राजा हुए और उनके वंशमें आगे चलकर अग्रसेन हुए हैं जिनका वृत्तान्त चतुर्थ अध्यायमें दिया जायगा।

(४)

महाराज अग्रसेन

धनपाल, मोहनदास, नेमिनाथ, वृन्द, गुर्जर, महीधर आदि मनस्वी और पुण्य पराक्रमी राजाओंकी परंपरासे पुनीत क्षत्रिय कुलमें महाराज अग्रसेनका जन्म हुआ।

देशकाल

महाराज अग्रसेनका जन्मकाल चाहे द्वापरके शेषमें हो चाहे कलिके प्रथम चरणके आरम्भमें हो अथवा और कोई समय हो इसमें सन्देह नहीं हो सकता कि वह समय बहुत अच्छा था। हिन्दू जातिका ही राज्य था। देशमें धन, था; धर्म था, विद्याका प्रचार था और चारो वर्ण अपने अपने कर्मसे रहते थे। गुण कर्म की ही इज्जत थी, सच्चेकी ही कदर थी और सब लोग सुखी और सन्तुष्ट थे। ब्राह्मण त्यागी थे, क्षत्रिय रक्षक थे वैश्य

सच्चे थे और शूद्र विनयी थे। ऋषिमुनि विद्यमान थे और उन्हीं की आज्ञासे राजा राज्य करते थे सब वर्णोंमें परस्पर प्रेम था और धर्म ही लक्ष्य था। धर्मके निमित्त सब कर्म किये जाते थे और अत्याचार, दुराचार या व्यभिचार कोई जानता नहीं था वीरतामें, विद्यामें, बुद्धिमें और बलमें भारतवर्षका उस समय संसारमें कोई सानी नहीं था। देश देशान्तरके लोग आकर भारतके विश्वविद्यालयोंमें पढ़ते थे और भारतकी कीर्ति दिग्दिगान्तमें फैली हुई थी।

पुरुषोंमें बहु विवाह प्रचलित हो गया था पर स्त्रियोंका सती धर्म प्रकाशमान था। पुरुषोंके साथ उनकी सहधर्मिणी स्त्रियां सती होती थीं। जिस देशमें स्त्रियां पुरुषोंके साथ सती हो सकती हैं वहां व्यभिचाररूपी उलूक उसके प्रकाशके सामने कैसे ठहर सकता है? पुरुषोंमें भी धर्मका भाव था, विद्या थी और बल था। भारतके तेजस्वी नेत्रोंसे कोई देश अपने नेत्र नहीं मिला सकता था। पर जंगशाही नहीं थी, धर्म राज्य था।७

जन्मोत्सव

बाल्यकाल और शिक्षा

ऐसे समयमें महाराज अग्रसेनका जन्म हुआ। यह कहनेकी आवश्यकता नहीं कि सारे राज्यमें आनन्द छा गया और सब प्रजाओंने अपने घर लीपपोतकर साफ़ कराये बन्दनवार बांधे

७. बांकेलाल कृत "मुख्तसर हालात महाराज अग्रसेन"

ध्वजा फहरायी, बाजन बजने लगे, घर घर आनन्द मनाया जाने लगा। नगरके हाकिमोंको किसीपर जबर्दस्ती नहीं करनी पड़ी। सबको स्वयं ही ऐसा आनन्द हुआ कि वह नाना प्रकारसे प्रकट होने लगा। घर घर पुत्रोत्सव मनाया जाने लगा। मिठाइयां बांटी गयीं। नगर निवासिनी स्त्रियोंने मंगल गीत गाये और सब प्रजाने राजप्रासादमें जाकर महाराजको बधाई दी। ब्राह्मणों ने आशीर्वाद दिया कि राजपुत्र चक्रवर्त्ती राजा हो, चिरायु हो और धर्मराज करके प्रजाका मंगल करे। इस प्रकार कई दिन राजधानी तथा समस्त राज्यमें आनन्द हुआ, बारहवें दिन नाम करण संस्कार हुआ। पुत्रका नाम अग्र रखा गया। इसी खुशीमें यमुना नदीके तटपर एक नया नगर निर्माण किया गया और उसका नाम भी अग्रपुर रखा गया जो अब आगरा हो गया है।' अग्रसेनका लालन पालन होने लगा। अग्रसेन जब कुछ बड़े हो गये तो प्राचीन शिक्षा प्रणालोके अनुसार उनकी शिक्षाका प्रबन्ध किया गया। अग्रसेनने वेद शास्त्रका सम्पूर्ण अध्ययन किया और शस्त्र विद्यामें भी निपुण हुए।

इस तरह शास्त्रोंमें पारंगत और शस्त्र सञ्चालन कुशल होकर अग्रसेन नाना प्रकारसे प्रजाका रंजन करने लगे। युवराज और प्रजामें प्रेम बढ़ने लगा और अग्रसेन सब प्रकारसे राज्य शासन करनेके योग्य हो गये तब उनके पिताने बहुत प्रसन्न होकर सन्यास ग्रहण करनेकी इच्छा प्रकट की। उस समय वर्णा-श्रम धर्मका पालन होता था। इसलिए महाराजकी इस

इच्छाका किसीने विरोध नहीं किया। अग्रसेन भी सब प्रकारसे योग्य हो गये थे। तब अच्छी सम्इत देखकर महाराजने अग्रसेनको राजतिलक कराया और आप सब झंझटोंसे छूटकर तपस्या करने तपोवनमें चले गये महाराज अग्रसेन उस समय ३५ वर्षके थे।१

महाराज अग्रसेनने राजपाट पाकर क्षात्रधर्मके अनुसार कईबार विजय यात्रा की और राज्यका विस्तार किया। इनके अधीन चम्पावती आदि अनेक माण्डलिक राज्य थे। ४० वें वर्षके लगभग इन्होंने अपनी पुरानी राजधानी प्रतापनगरका प्रबन्ध अपने छोटें भाईको सौंप दिया और आगरेमें नयी राजधानी कायम की। इस प्रकार इनका प्रताप दिन दूना रात चौगुना बढ़ रहा था जिसे देखकर प्रजा बहुत प्रसन्न होती थी। २

परन्तु अग्रसेन अभी ब्रह्मचारी ही थे। इन्होंने विवाह नहीं किया था। सबकी इच्छा थी कि महाराज विवाह करें। विवाह के सम्बन्धमें अनेक बातें हैं। उनमें कौन सच है और कौन झूठ, इसका निर्णय करनेके लिये अभी साधन नहीं है। एक कथा यह है कि एक दिन दरबारमें प्रधान मन्त्री रंजराजने विवाहको बात छेड़ी और कहा कि आपने ४० वर्ष ब्रह्मचर्य पालन किया है। पूर्ण ब्रह्मचर्य हो चुका है अब आपको विवाह करना चाहिये। महाराज ने भी कहा कि ठीक है। वंश विस्तारके लिये विवाह

१—मुख्तसर हालाते महाराज अग्रसेन।
२—" "

करना धर्म है। यह सुनकर सबको हर्ष हुआ। राजाओंके विवाह में क्या देर लगती है? एक छोड़ दो दो राजकन्याएं माला ले कर तैयार हो गयीं। एक कन्या चम्पावतीके राजा धनपालकी थी जिसका नाम धनपाला था, और दूसरी परमशहरके राजा सुन्दरसेनकी कन्या सुन्दरावती। महाराजने इन दोनों कन्याओं-से विवाह कर लिया। १

महाराज अग्रसेनके विवाहके सम्बन्धमें भारतेन्दु जीने जो पौरा-णिक कथा अपनी पुस्तकमें लिखी है वह इससे भिन्न है। उसका तात्पर्य यह है कि एक समय नागलोकसे नागोंका कुमुद नाम राजा अपनी माधवी कन्याको लेकर भूलोकमें आया। उसपर इन्द्र मोहित हुआ और उसने नागराजसे वह कन्या मांगी। पर नागराजने उसका विवाह अग्रसेनसे कर दिया। "यही माधवी कन्या सब अगरवालोंको जननी है" और इसी नाते अग्रवाल लोग सर्पोंको "मामा" कहते हैं। पर इस रहस्यमय कथाका अर्थ कुछ समझमें नहीं आता। तथापि इस कथाको कोई झूठ नहीं कह सकता। इसमें कोई ऐतिहासिक रहस्य है और उसकी गवाही अग्रवालोंकी वर्त्तमान प्रचलित प्रथा दे रही है। कईजिलों में अग्रवाल गृहस्थके द्वार पर सांपका चित्र बना रहता है, विवाह में सांपके फनके आकारकी चुण्डी बांधी जाती है इन बातोंसे यह मालूम होता है कि इसमें कोई गूढ़ ऐतिहासिक रहस्य है। आगेकी कथा यह है कि इस घटनासे इन्द्र और अग्रसेनके बीच

१ –मुख़्तसर हालत महाराज अग्रसेन

शत्रुता हो गयी। इन्द्रने इनकी राजधानी पर जल नहीं बरसाया और बड़ा युद्ध किया। तब ब्रह्माने बीचमें पड़कर दोनोंको युद्धसे रोका। यह एक विवाहकी बात हुई। दूसरे विवाहकी कथा, भारतेन्दुजीने यह लिखी है कि इन्द्रको वशमें करनेके लिये अग्रसेनने हरद्वारमें जाकर—महालक्ष्मीकी उपासना की। महालक्ष्मी प्रसन्न हुईं और उन्होंने उनकी कामना पूरी की। साथही यहभी बतलाया कि, "इस समय तुमकोल्हापुरमें जाओ ; वहां नागराजके आवतार राजा महीधरकी कन्याओंका स्वयंवर है,वहां उन कन्याओंसे व्याह करके अपना वंश चलाओ।" देवीकी आज्ञा पाकर अग्रसेन कोल्हापुर गये और उन कन्याओंको स्वयंवरमें जीत कर अपने राज्यमें ले आये। इसके अतिरिक्त मधु शालिनी नामकी एक अप्सरा भी आपके रनिवासमें थी। इन्द्रने मेल करनेके लिये यह अप्सरा अग्रसेनको दी थी। इस तरह सब मिला कर राजाकी १७ रानी और एक उपरानी थीं।

राज्य विस्तार

इतनी बात निर्विवाद है कि महाराज अग्रसेनने अनेक विवाह किये थे। विवाहके पश्चात् अग्रसेन राज्यके विस्तार और प्रबन्धमें लगे। उनके राज्यकी उत्तर सीमा हिमालय पर्वत और पंजाबकी नदियां थीं, पूर्व और दक्षिणकी सीमा श्री गंगाजी, और पश्चिमकी सीमा यमुनाजीसे लेकर मारवाड़की दक्षिण हद और उसके आसपासकी भूमि थी।'

पुत्र कामेष्टि यज्ञ

इस प्रकार महाराजको गृहसुख और राज्य वैभवकी कुछ कमी नहीं रही राजकी सारी प्रजा सुखी थी और महाराज अग्रसेनकी सदा जय मनाती थी। परंतु अभीतक महाराजके कोई सन्तान नहीं थी जिससे सर्व सुख होनेपर भी वह फीकाही जान पड़ने लगा। "गृह रत्नानि बालकाः" गृहस्थके घरकी शोभा बालक ही होते हैं। जिस घरमें सब सुख हो पर शिशुसन्तान न हो तो वह वैभव खानेको दोड़ता है। उसी प्रकार जिस राजाके राज्यमें आनन्द ही आनन्द हो पर युवराज न हो तो वह आनन्द दुःख ही देता है। महाराज अग्रसेनका भी यही हाल था। उनके सन्तान नहीं होती थी जिससे वे बहुत दुखी थे। तब उन्होंने पुत्रकी इच्छासे पुत्रकामेष्टि यज्ञ करनेका विचार किया। पौराणिक कथाके अनुसार महाराज अग्रसेनकी १७ रानियां थीं और एक उपरानी। इन अठारहों रानियोंसे सन्तान हो इसलिये महाराजने १८ यज्ञ करनेका संकल्प किया।

आजकल यज्ञादिक उपायोंपर लोगोंका विश्वास नहीं है, क्योंकि यज्ञका वैसा कुछ प्रभाव देखनेमें नहीं आता। पर प्राचीन समयमें लोग मानवी उपायोंसे दैवी उपायोंपर ही अधिक विश्वास करते थे, क्योंकि देवताराधन ही उनका परम व्यवसाय था और उन्हें सर्वत्र ईश्वरकी दिव्य मूर्ति दिखायी देती थी। मेघोंकी गड़गड़ाहटमें, बिजलीकी कड़कड़ाहटमें, दामिनीकी दमकमें,

धरतीके कंपमें, सूर्यके उदयास्तमें, जलमें, थलमें, नभमें सर्वत्र सब पदार्थोंमें परमेश्वरके दर्शन होते थे। प्रत्येक जड़ पदार्थके अन्दर वे ईश्वरका अस्तित्व मानते थे और जैसे प्रत्येक मनुष्य शरीरके अन्दर परमात्माके ही अंशरूप जीवात्माका बास है वैसे ही प्रत्येक जड़ पदार्थमें वे चैतन्य शक्तिका अनुभव करते थे। उस चैतन्य शक्तिका अधिष्ठान कोई न कोई ज्ञानमय, ज्ञानरूप ईश्वर विभूति है ऐसा उनका विश्वास था और इसलिये पंच महाभूतों और सृष्टिके सब दृश्यादृश्य पदार्थोंमें वे उनके अधिष्ठाता देवताओंकी कल्पना करके उनकी आराधना करते थे और उन्हें यह विश्वास था की जिस पदार्थके जो अधिष्ठाता देवता हैं उनके देवताओंको प्रसन्न करनेसे वे पदार्थ मिल जाते हैं। देवताओंके दिये हुए इन पदार्थोंको देवताओंकी सेवामें अर्पण करके फिर उनसे इष्ट फल मांगनेकी विधिको ही यज्ञ कहते हैं। भगवानने गीतामें कहा है "देवान् भावयतानेन"(इस यज्ञके द्वारा देवताओंको प्रसन्न करो)।" पहले यज्ञपर ही लोगोंका सारा भरोसा था। गीतामें भगवानने कहा भी है कि।

यज्ञा द्भवति पर्जन्यों यज्ञ कर्म समुद्भवः॥
कर्म ब्रह्मोदभवं विद्धि ब्रह्माक्षर समुद्भवम्।
तस्मात् सर्वगतं ब्रह्म नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम्॥

यज्ञकी ऐसी महीमा थी। किसीको कभी संदेह नहीं होता था कि यह यज्ञ क्यों चला है। कारण, उनकी मानसिक सामर्थ बड़ी थी—बड़ा मन्त्रबल था; मनको जीतने वाले लोग होते थे; वे

मनको जानते थे और जानकर उन मनके बलसे—मन्त्रबलसे वे अपने सब काम सिद्ध करते थे। अस्तु।

महाराज अग्रसेनने सन्तानके लिये १८ यज्ञ करनेका संकल्प किया। परंतु यज्ञ ब्रह्म कर्म है—सृष्टि कार्य है। वह इसी भावसे किया जाता है कि इस यज्ञमें हम जो दानकर रहे हैं वह हमारा नहीं है, उसीका है जिसको अब दे रहे हैं। इसीलिये यज्ञमें आहुति देते समय प्रत्येक आहुतिके साथ होता "इदं न मम" कहा करता है। अर्थात् यज्ञसे होनेवाला फल भी "न मम" ही है। यही भाव महाराज अग्रसेनका भी था ऐसा प्रतीत होता हैं, क्योंकि यज्ञके संकल्पके साथ उन्होंने यह भी संकल्प किया कि यज्ञसे जो सन्तान होगी उस सन्तानका गोत्र भी यज्ञके प्रधान आचार्य ऋषीके नामसे हो।

महाराजने १७ यज्ञ यथा विधि संपन्न किये। ये १७ रानियोंसे सन्तान पानेकी इच्छासे किये गये थे और वे संपूर्ण भी हो गये। परंतु १८ वां यज्ञ जब होने लगा तब अकस्मात् महाराजका मन फिर गया। उन्हें "यज्ञकी हिंसासे बड़ी ग्लानि हुई" और उन्होंने कहा "हमारे कुलमें यद्यपि कहीं भी कोई मांस नहीं खाता परंतु दैवी हिंसा होती है सो आजसे जो मेरे वंशमें हो उसको यह मेरी आन है कि, दैवी हिंसा भी न करें अर्थात् पशुयज्ञ और बलिदान भी हमारे वंशमें न हो।" अग्रसेनने वह यज्ञ पूरा नहीं किया। इस बातकी मीमांसा करके निर्णय करना हमारे अधिकारके बाहर है कि यज्ञमें जीवहिंसा कहांतक ठीक है।

यज्ञके बलसे महाराज अग्रसेनके प्रत्येक रानी (उपरानी सहित) से "तीन तीन पुत्र और एक एक कन्या हुई"। इस प्रकार ५४ पुत्र १८ कन्याएं हुईं। कोई कोई कहते हैं कि ५४ नहीं बल्कि प्रत्येक रानीसे एक एक पुत्र हुआ याने कुल १८ पुत्र हुए। जो हो पूर्व संकल्पके अनुसार जिस यज्ञसे जो सन्तान हुई उस यज्ञके ऋषिके नामसे उस सन्तानका गोत्र माना गया अर्थात् १८ यज्ञोंसे १८ गोत्र कायम किये गये जिनके शुद्धनाम अब इस प्रकार अप भ्रंश हो गये हैं—(१) गर्ग, (२) गोइल (३) गावाल, (४) बांसिल, (५) कांसिल, (६) सिंगल, (७) मंगल, (८) बिन्दिल, (९) तिंगल, (१०) ऐरण, (११) टेरण, (१२) ढिंगल, १३ तित्तल, (१४) मिन्तल, (१५) तुन्दल, (१६) तायल, (१७) गोभिल और (१८) गौण। गौणशब्दका अर्थ अप्रधान अर्थात् मुख्य नहीं, ऐसा है और यह गोत्र आधा माना भी जाता है। किस कारणसे यह गोत्र आधा माना जाता है इसका निर्णय करना बड़ी जिम्मेदारी का काम है। यज्ञ आधा हुआ इसलिये आधा गोत्र हुआ अथवा और कोई कारण है इसका विचार गोत्र समस्याके अध्यायमें करेंगे।

चरित्रकी कुछ बातें

अग्रसेनजी राज गद्दीपर बैठे तब प्रजा सब प्रकारसे सुखी थी यह ऊपर देख ही चुके हैं। अग्रसेनकी प्रथम राजधानी प्रतापनगर थी और वहां धन, अन्न, रत्न और गोधनआदि किसी बातकी कमी नहीं थी। [illegible] इन्द्र राजाके मित्र थे समयपर वर्षा होती थी और

दुर्भिक्षका कहीं नाम भी सुनायी नहीं देता था। पर कुमुद राजाकी कन्या माधवीसे विवाह होनेके पश्चात् कुछकाल अग्रसेन के राज्यमें दुर्भिक्षका भयंकर प्रकोप हुआ था। तब महाराज अग्रसेन बहुत घबराये और दुर्भिक्ष निवारणके निमित्त स्वयं स्थान स्थानान्तरमें पर्यटन किया, तीर्थयात्राकी और महालक्ष्मीकी भक्तिसे उन्हें प्रसन्न किया जिससे दुर्भिक्षका निवारण हुआ। पर राजा अभी अपने राज्यमें नहीं गये। प्रधान रानी ही सब प्रबन्ध करती थीं। इस दुर्भिक्षसे राजाको बड़ा क्लेश हुआ था और उन्होंने इन्द्रको वशमें करनेके लिये काशीमें आकर कपिलधारा तीर्थमें महादेवजीकी उपासना की। महादेवजी प्रसन्न हुए और उन्होंने अनेक बर देकर यह बतलाया कि तुम महालक्ष्मीकी उपासना करो। अग्रसेन एक 'प्रेत' की सहायतासे हरिद्वार गये और वहां की तपोभूमिमें बैठकर देवीकी आराधना की। देवीने प्रसन्न होकर बर दिया कि "इन्द्र तेरे वशमें होगा।„ इसके बाद अग्रसेन कोल्हापुरमें गये; स्वयंवरमें कन्याओंको जीता, फिर राज्यमें लौट आये इत्यादि कथा ऊपर आही गयी है। महालक्ष्मीके प्रसादसे सब कामना पूर्ण हुई देख अग्रसेनने अपनी राजधानीमें महालक्ष्मीका एक बड़ा मन्दिर बनवाया था।

इस प्रकार राज्य और वंशका विस्तार करके महाराज अग्रसेनने अनेक वर्ष धर्मराज्य किया।" "यथा राजा तथा प्रजा„ यह कहावत प्रसिद्ध ही है। जैसे राजा होते हैं वैसी ही प्रजा बनती है। राजा यदि धर्मको मानता है तो प्रजामें भी वैसे बत्ता

है। राजा यदि प्रजाको अपने पुत्रके समान समझता है तो प्रजा भी उसे पिताके तुल्य मानती है। परन्तु यदि राजा प्रजाको ठगता है, अपने धर्मका पालन नहीं करता, राज्यको अपने विषय सुखका साधन समझता है, प्रजाको भूखों मार आप बड़ा बनता है और अत्याचार करता है। तो उस राजाकी प्रजा भी राजासे शत्रुता करती है और उसे गद्दीसे उतार देती है। राजा देवता है तो प्रजा भी देवता है। राजा यदि राक्षस है तो प्रजा भी ब्रह्मराक्षस बन जाती है। महाराज अग्रसेन स्वयं धर्मात्मा थे; उनकी प्रजा भी धर्मात्मा थी। सब द्विज वेदोंका अध्ययन करते और त्रिकाल साधते थे। प्रजातंत्र राज्य, जैसा इस समय समझा जाता है वैसा, तो नहीं था; पर राजतंत्र भी नहीं था। येरिपब्लिक भी नहीं था। तो क्या था? धर्मराज्य था। धर्मशास्त्र ही राजा था, ऋषि उसके मन्त्री थे, महाराज अग्रसेन उनकी आज्ञा पालन करनेवाले सेवक थे और प्रजा राज्यकी परीक्षा करनेवाली संस्था थी और राजाप्रजामें मतभेद होनेपर धर्मशास्त्र न्यायालयसे जो आज्ञा होता था उसीका पालन राजा और प्रजाको करना पड़ता था। महाराज अग्रसेनने अनेक वर्ष इस प्रकार धर्म राज्य किया और जब उन्होंने देखा कि अब ये लड़के लोग राज्य सम्भालेंगे तब उस वृद्धावस्थामें अपना राज्य लड़कोंके हवाले करके आप तपस्या करने उत्तराखण्डकी ओर चले गये। कैसा दिव्य जीवन था!

(५)

महाराज अग्रसेनके पुत्र

भविष्योत्तर पुराणके आधारपर भारतेन्दु हरिश्चन्द्रने लिखा है कि महाराज अग्रसेनके १८ रानियोंसे ५४ पुत्र और १८ कन्याएं हुईं। राजवंशी लेखकोंका यह कहना है कि महाराजके १८ रानियां थीं और उनसे १८ ही पुत्र हुए। बहालसिंह और बांकेलालने उनके नाम इस प्रकार दिये हैं— (१) पुष्पदेव, (२) गेन्द्रमल, (३) कर्णचन्द्र, (४) मणीपाल, ५(बलन्द, (६) धावदेव, (७) वीरभान, (८) वासुदेव, (९) जीतजनक, (१०) मन्त्रपति, (११) अमृतसेन, (१२) इन्द्रमल, (१३) ताराचन्द, (१४) सिन्धुपत, (१५) तंबोल, (१६) नारसिंह, (१७) माधवसेन, और (१८) धौधर। परंतु एक तीसरे लेखक जो भी राजवंशी ही हैं अग्रसेनके पुत्रोंकी एक दूसरी ही नामावली पेश करते हैं जो उक्त नामावलीसे बिलकुल भिन्न है। अनूपसिंह राजवंशीने १७ पुत्रोंके ही नाम दिये हैं और वे इस प्रकार हैं— (१) नेमभडर, (२) शुचिमान, (३) भोजमान, (४) कोलदेव, (५) बसुहान, (६) वासकी, (७) देवभाग, (८) शुचिसर्वा, (९) धर्मनाभ, (१०) कंपनाभ, (११) केशवदेव, (१२) बालकृष्ण, (१३) रमानाथ, (१४) रणवीर, (१५) रणकीर्ति, (१६) कुशा और १७ ...। इस तरह इन राजवंशी इतिहास लेखकोंके बीच बड़ा ही अन्तर है। सम्भव है, दोनों ही गलतीपर हों और पुत्रोंकी संख्या १८ से तिगुनी ही हो जैसा कि भविष्योत्तर

पुराणमें लिखा है। परन्तु इन ७२ पुत्र पुत्रियोंके नाम कहीं नहीं मिलते। केवल १८ नाम ही उक्त राजवंशी लेखकोंने दिये हैं जिनमें परस्पर मतैक्य भी नहीं है। इस लिये १८ नामोंकी दोनों फेहरिस्तें जोड़ दें तो यह भी प्रमाणाभावसे ठीक न होगा। अब इन दोनों फेहरिस्तोंमेंसे एकको ही चुनकर काम चलाना होगा। अनूपसिंह राजवंशीकी फेहरिस्तमें केवल नाम ही हैं। उनके चरित्रकी किसी बातका उल्लेख नहीं है और बांकेलाल तथा बहालसिंहकी नामावलीके साथ चरित्रकी घटनाओंका भी उल्लेख है। यद्यपि ये सब घटनाएं इतिहासकी कसौटीपर कसी हुई नहीं हैं तथापि उसमें ही इतिहास ढूढ़ निकालनेका मोका तो मिलता है। इसलिये इसी नामावलीको लेकर हम आगे चलते हैं।

राजवंशी बांकेलाल लिखते हैं कि महाराज अग्रसेनने पतंजलि मुनिसे परामर्श करके अपने इन पुत्रोंको ऋषिकुलमें पढ़नेके लिये भेज दिया। ऋषिकुल उस समय १८ थे। राजपुत्रोंमें सबसे बड़ा पुष्पदेव था और यह युवराज कहलाता था। पुष्पदेव समेत सब राजपुत्रोंने भिन्न भिन्न ऋषिकुलोंमें वेद वेदांग और धनुर्वेदकी शिक्षा पायी और विद्वान होकर जब राजपुत्र ऋषियोंके साथ राजधानीमें लौट आये तो राजधानीमें उनके स्वागतके लिये बड़ा समारम्भ हुआ और राजसभामें उनकी परीक्षा हुई। राजसभामें उस समय पण्डितों और वाग्मियोंका क्या अभाव था। एकसे एक विद्वान, कवि, कल्पक और निष्णात लोग थे। राजपुत्रोंसे

उन्होंने अनेक प्रश्न किये। राजपुत्रोने इन प्रश्नोंके जो उत्तर दिये उनसे राजा और राजसभाको बहुत हर्ष हुआ। महाराजने ऋषियोंके चरण छुए, बार-बार उन्हें धन्यवाद दिया और उनका उस कालकी पद्धतिके अनुसार उचित सत्कार करके उन्हें विदा किया।

राजपुत्र ऋषिकुलोंमें अध्ययन करके वेदस्मृति आदि तथा उस कालके उपयोगी ज्ञानको प्राप्त करके विद्वान और व्यवहार चतुर तो होही चुके थे। अब राजधानीमें आकर उन्होंने राज-काजका अनुभव प्राप्त करना भी आरम्भ किया। ऋषिकुलोंके पवित्र और शुद्ध स्थानमें रहनेके कारण उनके शरीर बलिष्ट और तेजस्वी हुए थे। नेत्रोंमें ज्योति थी, बाहुमें बल था, मनपर धर्मका संस्कार था, और रोम रोमसे ब्रह्मचर्यका तेज टपक रहा था। महाराज अग्रसेनने इस तरह जब सोचा कि सब पुत्र विवाहके योग्य हो गये हैं तब उन्होंने उनका विवाह करा दिया। अवश्य ही जिन पुत्रोंकी वयस थोड़ी रही होगी, जिनका ब्रह्मचर्यकाल और विद्याध्ययन पूरा न हुआ होगा उनका विवाह उन्होंने न कराया होगा। परंतु उनके पुत्रोंको वयसमें परस्पर कितना अन्तर था और सभी एक साथ विवाहके योग्य हो गये थे या उनमें वयस्के विचारसे कुछ छोटे और कुछ बड़े भी थे यह जाननेका कोई उपाय नहीं है। तथापि प्राचीन पद्धति ऐसी ही थी कि बिना ब्रह्मचर्यकाल और अध्ययन पूरा किये किसीका विवाह नहीं होता था और महाराज अग्रसेनके समय भी यही बात थी।

दूसरी बात यह भी संभव है कि महाराजके १८ रानियोंके प्रथम गर्भसे जो १८ पुत्र हुए वे सब समवयस्क हों। राज वंशीलेखकोंको इन्हींकी नामावली मिली हों और द्वितीय, तृतीय गर्भसे उत्पन्न सन्तानोंकी नामावली न मिली हो, यह भी हो सकता है।

प्राचीन समयमें और अब भी कहीं कहीं यह देखनेमें आता है कि राजों और राज कुमारोंके विवाह एकसे अधिक होते थे। महाराज अग्रसेनने स्वयं अनेक विवाह किये थे। परंतु यह प्रथा अच्छी नहीं है। अस्तु। इस प्रथाके अनुसार महाराजने अपने पुत्रोंके भी दो दो विवाह करा दिये थे। जब इन १८ पुत्रोंका पहला विवाह हो चुका तब इसके कुछ काल बाद अहि नगरके राजा वासक* अग्रसेनकी राजधानीमें आये। इनके १८ कन्याएं थीं और इनकी यह प्रतिज्ञा थी कि जिस राजाके १८ पुत्र होंगे उन्हींके यहां अर्थात् सब कन्याओंको एकही जगह ब्याह दूंगा। राजा वासकने अपनी यह इच्छा महाराज अग्रसेनपर प्रकटकी और महाराज अग्रसेनने उनका यह प्रस्ताव मंजूर कर लिया। इस प्रकार उन १८ पुत्रोंका एक एक विवाह और हो गया। उन १८ दंपतियोंके नाम इस प्रकार हैं १ युवराज पुष्पदेव—(१) संगदीपके राजाकी कन्या पोपनन्दा और (२) नाग कन्या पद्मावतीसे २ गेंद्रमल-(१) रोतागढ़के राजा चंद्रकी कन्या चंद्रावती और (२) नाग कन्या तंबोली देवीसे; ३ कर्णचन्द्र-(१) नन्द राजकी

* राजा वासक अहि नगरके राजा थे, इसलिये नागराज कहलाते थे और इसी-लिये उनकी कन्याएं नाग कन्याएं कहलाती हैं।

कन्यां सिन्धुवती और (२) नाग कन्याको शवन्तोसे ४ मणी पाल (१) दर्यावखंडके राजा वाहाककी कन्या मन्दावती और (२) नागकन्या विष्णु देवी; ५ कानकन्द—(१) मणी कन्दके राजा मतोध्वजकी कन्या आज्ञावती और (२) नागकन्या पाली ; ६ ध्यापदेव (१) वर्धेकी कन्या उरस्ता और (२) नागकन्या रमादेवी (७) वीरस्नान (१) पूर्णवंशके राजा विजयचन्द्रकी कन्या चन्दादेवी और (२) नागकन्या सुमन्त्री ८वासुदेव (१) भ्रान्तपुरके राजा जयन्तकी पुत्री फूलदेवी और (२) नागकन्या गोमती; ९ जीतजनक (१) रंगपुरके राजा समाध्वजकी पुत्री सामावती और (२) नागकन्या हीरादेवी ; १० मनपति (१) अमरावतीकी राजकन्यां अमरादेवी और (२) नाग कन्या गोमती; ११ अभृत सेन—(१) विदत पुरके राजा इन्दुसेनकी पुत्री माधववती और (२) नाग कन्या अमरावती; १२ इन्द्रमल—(१) भीम् पुरके राजा लोकानन्दकी पुत्री लोकनन्दा और (२) नाग कन्या केशवदेवी; १३ ताराचन्द—(१) सरोवर गढ़के राजा माधवसेनकी पुत्री तोरणदेवी और (२) नाग-कन्या लजवंती; १४ सिन्धुपत—(१) लालनगरके राजा जावालसेनकी कन्या वासन्ती और (२) नाग कन्या ईलादेवी; १५ तंबोल—(१) ताराशहरके राजा सिन्धुकी कन्या गोमती और (२) नागकन्या रमावती; १६ नृसिंह—(१) सिंधुपुरके राजा मणीकी पुत्री शैलवती और (२) नागकन्या आशावती; १७ माधवसेन—(१) [illegible]पुरके राजा वीरभानकी पुत्री मोहिनी और (२) नागकन्या नवरंगदेवी १८ गौधुर—(१) बलहकके राजा सुदर्शनकी पुत्री तारावती और (२) मधवनती

अनूपसिंह राज वंशीने लिखा है कि पहला विवाह नाग कन्याओंके साथ ही हुआ था। पर रातके समय ये नागकन्याएं सर्पिणी हो जाती थीं। इससे उन्होंने अपने पुत्रोंका दूसरा विवाह अपने मांडलिक राजाओंकी कन्याओंके साथ करा दिया। परन्तु इन्होंने अग्रसेनके पुत्रोंकी जो नामावली दी है वह भी हमने इस परिच्छेदमें स्वीकार नहीं की है इसलिये इस विषयको भी उल्लेख मात्र करके छोड़ देते हैं। इसमें नागकन्याओंके सर्पिणी होनेका जो विषय लिखा है उसका विचार रहस्यवाले प्रकरणमें करेंगे।

यहांतक राजवंशी लेखकोंकी दी हुई वंशावलीके आधार पर ही वर्णन किया गया है। नागवंशी लेखकोंने ५४ पुत्र और १८ कन्याएं मानी हैं और इसका आधार भविष्योत्तर पुराण है। परंतु इन ७२ पुत्र पुत्रियोंके नाम किसीने नहीं दिये हैं। ये नाम क्या हो गये? कहीं मिल सकते हैं या नहीं? इसके अनुसन्धानकी आवश्यकता है।

महाराज अग्रसेनके पुत्रोंके संबंधमें भारतेन्दुजीने केवल इतना ही लिखा है कि ७२ पुत्र पुत्रियां थीं और अग्रसेनके बाद उनका पुत्र विभु राज गद्दीपर बैठा। राजवंशी लेखकोंने जो नाम दिये हैं उनमें विभुका नाम नहीं है इसलिये यह अनुमान होता है कि पूरे नाम राजवंशी लेखकोंको भी नहीं मिले हैं, परंतु इसमें सन्देह नहीं कि राजवंशी लेखकोंने जितनी सामग्री उपस्थितकी है उससे कुछ न कुछ प्रकाश पड़ता है और यह मालूम होता है कि महाराज अग्रसेन अब सब पुत्रोंको धर्म और राजनीति तथा

रण विद्यामें निपुण करके तपोवनमें तपस्या करने चले गये उस समय उनके पुत्र इस योग्य हो गये थे कि धर्मकी आज्ञाके अनुसार राज्यका शासन करके प्रजाका रंजन करनेमें कोई बात उठा न रखें। इस द्रष्टिसे हम कह सकते हैं कि महाराज अग्रसेनके बाद उनके पुत्रोंके समयमें भी प्रजा सब प्रकारसे सुखी थी। राजवंशी बहाल सिंह और बांके लालके कथनानुसार पुष्पदेव (इसका दूसरा नाम विभु भी रहा होगा) ही महाराज अग्रसेनके बाद राजगद्दीपर बैठा और इसने अग्रसेनकी कीर्तिको फैला कर अपने उत्तम शासनसे प्रजाका पूर्ण प्रेम संपादन किया था।

(६)

वंश विस्तार

पांचवें परिच्छेदमें हमने यह देखा कि महाराज अग्रसेनके ५४ पुत्र और १८ पुत्रियोंमेंसे केवल १८ पुत्रोंकी ही नामावली मिलती है और शेष पुत्र और पुत्रियोंके नाम नहीं मिलते। यह भी हमने देखा कि इन १८पुत्रोंके दो दो विवाह हुए थे। एक विवाह किसी मांडलिक राज कन्याके साथ और दूसरा अहि नगर या नाग लोकके राजा वासककी १८ कन्याओंमेंसे एक एक कन्याके साथ। अब राजवंशी लेखक यह कहते हैं कि राजकन्याओंसे जो सन्तति हुई वह राज वंशी कहलायी और नागी कन्याओंसे जो हुई वह नागवंशी कहलायी। परन्तु नागवंशी लेखक यह सिद्धान्त स्वीकार नहीं करते और भविष्योत्तर पुराणके आधार पर वे यह बतलाते

हैं कि महाराज अग्रसेनकी हो १७ रानियां और १ उपरानी थीं और इन्हींमें नागलोकके राजा कुमुदकी माधवी नाम्नी परम रूपवती कन्या थी और इस माधवी मातासे जो सन्तान हुई वही नागवंशी कहलायी। इस प्रकार दो परस्पर विरोधी व्युत्पत्तियां बतलायी जाती हैं। अवश्य ही इनमेंसे एक बात सच होगी और दूसरी झूठ, परंतु इस विषयका पूरा विवरण जबतक प्राप्त नहीं होता तबतक कोई निश्चय लिपि बद्ध करना कठिन है। इसमें सन्देह नहीं कि नागवंश और राजवंश ये दो भेद पहलेसे चले आते हैं और इन दोनों वंशोंके गोत्र समान हैं यद्यपि खान-पान और ब्याह शादीमें भेद हो गया है।

नागवंशी लेखकोंने इस विषयकी बहुत खोज नहींकी और राजबंशी लेखकोंने महाराज अग्रसेनके पुत्रोंके वंशविस्तारके संबंधमें कुछ तो हस्तलिखित ग्रन्थोंके आधारपर और कुछ अपनी कल्पनासे जो बातें संग्रहकीं हैं वे ही इस समय "अभावे शालि चूर्णं वा" का काम दे सकती हैं। अस्तु।

महाराज अग्रसेनके पश्चात् उनके बड़े बेटे पुष्प देव राज गद्दीपर बैठे यह हम अगले परिच्छेदमें देख आये हैं। राजवंशी लेखक बहाल सिंह ओर बांकेलाल कहते हैं कि पुष्पदेवके अनेक पुत्र पुत्रियां थीं जिनमें सबसे बड़े बेटेका नाम अमिन्तामन था। पुष्पदेवके पश्चात् इन्हींको राजगद्दी मिली। इनके पोते रणवीर जीतके नामसे विख्यात हुए और मथुराके महा प्रतापी राजा कंसके साथ इनका युद्ध हुआ बतलाया जाता है।

इस युद्धमें रणवीर जीतकी मृत्यु हुई तब अगरोहेकी राजगद्दी पर रणवीर जीतके पड़पोते चरण चन्द्र वैठे। १८ पुत्रोंकी वंशशाखाओंका वर्णन किया है।

इस वंशावलीमेंसे कुछ विशेष बातें यहां देते हैं—अग्रसेनके द्वितीय पुत्र गेन्द्रमलके वंशमें गंधर्व कुलसे महेश्वर हुए। और बहालसिंह वतलाते हैं कि इन्हींसे माहेश्वरी वंश चला। तीसरे पुत्र कर्णचंदके वंशमें मगध देशके राजा जरा सन्ध हुए। चौथे पुत्र मणिपालके वंशमें, गुप्त वंशीय सुप्रसिद्ध सम्राट् चंद्रगुप्त हुए। पांचवें पुत्र वलंदके वंशमें संवत् कर्ता विक्रमादित्य और उन्हीके वंशको एक शाखासे शककर्ता शालिवाहन हुए। आठवें पुत्र वासुदेवके वंशमें शिशु पाल राजा हुआ। नवें पुत्र जीत जनकके वंशमें धर्मसेन राजा हुआ जिसने धाराधिपति समरजीतसे मिल कर अगरोहेका विध्वंस किया। इसी वंशकी दो शाखाएं पीछे पाल और सेन नामसे विख्यात हुई। ग्यारहवें पुत्र अमृतसेनके वंशमें रुक्मा शिथ हुए जो रस्तोगी वंशके मूल पुरुष हैं। चौदहवें पुत्र सिन्धु पतके वंशमें गौतम बुद्ध देव हुए। अठारवें पुत्र गौधरके वंशसे औठाकुर और विशुन ठाकुरोंकी उत्पत्ति हुई। ये बातें इतिहासकी कसौटीपर कसनेपर कहांतक ठीक उतरेंगी यह नहीं कह सकते; परन्तु लेखकने हर वातके साथ हस्तलिखित ग्रन्थोंका प्रमाण दिया है। ये हस्तलिखित ग्रन्थ कहांतक ठीक हैं यह भी जाचनेका विषय है जो परिश्रम और कालसे ही साध्य है। लेखकने जिन प्रमाण ग्रन्थोंके आधार पर ये

बातें लिखी हैं उनके नाम प्रथम प्रकरणमें आ गये हैं। बहालसिंहने लिखा है कि दुर्योधनके राज्यकालमें धर्मसेन, अग्र-हायण सेन, भूमल, अर्कसेन, इन्द्रसेन, जीतसेन आदि १५० नाग-वंशी प्रसिद्ध पुरुष वर्तमान थे और राजवंशियोंमें प्रेमसेन, रुक्म आदि ७५ पुरुष प्रसिद्ध थे।

महाराज अग्रसेनकी सन्ततिके विषयमें भविष्योत्तर पुराण आदि ग्रन्थोंके आधारपर भारतेन्दुजीने इतना ही लिखा है कि, "अग्रसेन वृद्ध होकर जब तप करने चले गये तब उनका पुत्र विभु राज्यपर बैठा और उसके कई वंशतक राजा लोग अपने धर्ममें निष्ठ होकर राज्य करते रहे। इस वंशमें दिवाकर एक राजा हुआ जिसने वेद धर्म छोड़कर जैन मत ग्रहण किया। तबसे अगरवालोंसे वेद धर्म छूटने लगा। परन्तु अगरोहा और दिल्लीके अगरवालोंने अपना धर्म नहीं छोड़ा। इस वंशमें राजा उग्रचन्द्के समयसे राज्य घटने लगा।" बांकेलालने लिखा है कि मगध देशके राजा श्रीधनके समयमें अगरवाले श्रीधनके अधीन मुआफीदार ही रह गये थे। जब शहाबुद्दीनने चढ़ाई की तब तो अगरोहेका विध्वंस ही हो गया। शहाबुद्दीनकी लड़ाईमें बहुतसे लोग मारे गये और उनकी अनेक स्त्रियां सती हुईं जो हम लोगोंके घरमें अबतक मानी और पूजी जाती हैं। यह अगर-वालोंके नाशका समय था। इसी समयसे बहुतोंने धर्म छोड़ दिया और यज्ञोपवीत तोड़ डाले। उस समय जो अगरवाले भागे वे मारवाड़ और पूर्वमें जा बसे। उनके वंशमें पुरबिये

और मारवाड़ी अगरवाले हुए ; उत्तराधी और दक्खिनाधी लोग भी इसी भांति हुए।"

इस प्रकार भारतेन्दुजीके मतानुसार अग्रवाल वंशकी चार शाखाएं हुईं। परन्तु उत्तराधी और दक्खिनाधी "ये शब्द अप्रसिद्ध हैं। भारतेन्दुजीने राजवंशीका उल्लेख नहीं किया है जो एक प्रसिद्ध शाखा है। और इसतरह तीन ही शाखाएं मुख्य मानी जाती हैं (१) मारवाड़ी अग्रवाल जिनका वासस्थान दिल्लीसे पश्चिम माना जाता है, (२) पुरबिये या देशवाली जो युक्तप्रदेशमें जाबसे और तीसरा राज वंशी जिनका वास विशेष कर युक्त प्रदेशमें ही है। इनमें मारवाड़ी अग्रवाल और देशवाली अग्रवालों में परस्पर संबंध होता है। यद्यपि दोनोंकी रहन सहन और रीतिरिवाजमें परस्पर बड़ा प्रभेद हो गया है जो शायद प्रान्त भेदके कारण ही हो गया है। राजवंशी अग्रवालोंके साथ इन दोनोंका संबंध नहीं होता। इसका कारण क्या है यह एक ऐतिहासिक रहस्य है जिसका उद्घाटन अभी तक नहीं हुआ है। इसी प्रकार मारवाड़ी और पुरबिये अग्रवाल जो नागवंशी हैं "विस्से" कहलाते हैं। और राज वंशी दस्से कहे जाते हैं। विस्से शब्द या तो "विष्णु" का अपभ्रंश होगा या "वैश्य"का और नागवंशी अग्रवाल विष्णुवंशी कहलाते भी हैं। पर" दस्से शब्दकी व्युत्पत्ति कुछ नहीं लगती। नागवंशियोंमें यह आम ख्याल है कि "दस्सा" शब्द धर्मसे च्युत होनेका बोधक है। इस हिसाबसे दस्यु, "दासी", अथवा "दोष" से यह "दस्सा"

शब्द निकला होगा और कुछ लोगोंका यह कहना है कि महाराज अग्रसेनकी उपरानीसे जो सन्तति हुई वही दासी पुत्र या "दस्से" कहलाती है। परंतु जबतक कोई ऐतिहासिक प्रमाण जो इस भेदके अन्दर छिपा हुआ है नहीं मिलता तबतक इसका कुछ निर्णय नहींहो सकता। गोत्र, व्यवहार, आचारविचार आदिके हिसाबसे तो जैसे नागवंशी हैं वैसे ही राजवंशी भी है और इनमें परस्पर सहानुभूति भी है। परंतु इतिहासकारको अपना हृदय कठोर करके सत्यान्वेषण करना पड़ता है।

इस संबंधमें राजवंशीयोंने यह लिखा है कि इस भेदका कारण कुछ भी नहीं है सिवाय परस्पर ईर्षाद्वेषके। परिच्छेदके आरंभमें ही राजवंशियोंके इस मन्तव्यका उल्लेख हम कर आये हैं कि महाराज अग्रसेनके पुत्रोंने नाग कन्याओंसे विवाह किया था और राजकन्याओंसे भी। नागकन्याएं भी राज कन्याएं ही थीं परंतु नागकन्याओंके नाममें "नाग" पद विशेषतादर्शक था और इन दोनो कन्याओंसे अलग अलग जो सन्तति हुई उसकी अलग अलग पहचानके लिये नागवंश और राज वंश ये नाम पड़े यह राजवंशी लेखकोंका कहना है। फिर परस्पर इतना भेद क्यों हुआ? इसका कारण वे यह बतलाते हैं कि भारतमें बौद्ध धर्मका जब प्रचार हो रहा था उस समय अगरोहेके विपुहल, नाथादीन और खड्गसेन इन तीन नागवंशियोंने वैदिक धर्म छोड़कर बौद्ध मत ग्रहण किया। पीछे सभी नागवंशी बौद्ध होगये। इससे राजवंशी नागवंशियोंसे बहुत असन्तुष्ट

हो गये। होते होते यह असन्तोष यहां तक बढा कि शत्रुता हो गयी और आपसमें खानपान उठना बैठना सभी व्याहार बन्द हो गया। यही फूट दिन दिन बढती गयी और इसीका संबत् ७५८ में यह परिणाम हुआ कि अगरोहेके राजा धर्मसेनने धारा नगरीके राजा समरजीतको अपनी राजधानीपर आक्रमण करनेका निमंत्रण दिया।

इन दो मतोंमेंसे कौन मत ठीक है इसका निर्णय करनेका काम भावी इतिहास कारपर छोड़ कर हम पाठकोंका ध्यान उस परिस्थितिकी ओर दिलना चाहते हैं-जो शेषोक्त मतके प्रतिपादनमें प्रसंगसे वर्णित हुई है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि उस समय बौद्धमतका प्रचार बढ रहा था। महाराज अग्रसेनका क्षत्रिय धर्मत्यागकर वैश्य धर्म ग्रहण करना एक संदिग्ध विषय है और उसमें सन्देह इस बातका है कि वे शायद जैन धर्मके प्रभावमें आ गये थे और कवियोंने भी उन्हें वही उपदेश दिया था। जैन धर्मके आदि प्रवर्तकका काल आधुनिक इतिहास-कारोंने विक्रमसे ५४२ वर्ष पहले माना है परंतु जैनश्रुति परंपराके अनुसार जैन धर्म इससे बहुत पहलेका है और विक्रमसे ५४२ वर्ष पहले जो जैनाचार्य महावीर हुए वे आदि प्रवर्तक नहीं बलिक जैन संप्रदायके अन्तिम तीर्थङ्कर थे। संभव है कि महाराज अग्रसेनके समयमें भी किसी न किसीरूपमें जैनमतका प्रचार हो। परंतु इसके अतिरिक्त, और कोई प्रमाण नहीं है जिससे वह धारणा दृढ़ हो। इसलिये यह विषय सन्दिग्ध है। परंतु

इनके बाद अग्रसेनके वंशमें दिवाकर राजाने जैनधर्म ग्रहण किया था यह स्पष्ट उल्लेख है। बौद्ध धर्मके प्रचारकी बात ऊपर आही गयी है। संभव है इन मत मतान्तरोंके कारण आपसमें बैर बढ़ा और इसीसे समरजीतके समय अगरोहेकी दुर्दशा हुई हो। यहां यह भी लिख देना आवश्यक है कि अग्रवालोंमें आज भी अनेक घर जैनी हैं जो दिवाकरके समयसे इस सम्प्रदाय को मानते चले आये हैं। परन्तु वैदिक धर्मी और जैनी धर्मी अग्रवालोंमें परस्पर व्यवहारमें कोई भेद नहीं है जैसा राजवंशियों और नाग वंशियोंमें है। इसलिये इस भेदके भीतर और भी कोई ऐतिहासिक घटना होगी जिसका अनुसन्धान होना आवश्यक है।

अब इस विषयको यहीं छोड़ आगेकी राजकीय घटनाएं देखें।

जिस समयका ऊपर वर्णन हुआ है उस समय अग्रवालोंकी राजधानी अगरोहेमें ही थी और अगरोहेका चरित्र ही उस समय के अग्रवालोंका चरित्र है। अगरोहेके विध्वंसकी बात ऊपर आई है। इसका विशेष विवरण देखें क्या मिलता है।

अगरोहा राज धानीके विध्वंसके संबंधमें वहाल सिंहने लिखा है कि विध्वंसकी यह घटना विक्रमीय संवत् ७५८ में हुई। उस समय धर्मदीन अगरोहेका राजा था। वह राजा प्रजाका शत्रु था और मालूम होता है कि उस समय अगरोहेमें जो १५२ तालुके थे वे सब इसके विरुद्ध उठे थे। इसने धारा नगरीके राजा समर जीतको अगरोहेकी संपत्तिका लोभ दिखाकर अपनी मददके

लिये बुलायो। समर जीतने अगारोहेपर चढ़ाईकी। गोकुलसेन राजबंशी और इन्द्रसेन नागबंशीने बड़ी बीरताके साथ शत्रुका सामुना किया पर अन्तमें अगरोहेवालोंकी हार हुई और समर-जीतकी जीत हुई और उसमें अगेरोहेको लूट लिया। तब अग-रोहेके अधिवासी कोल, पानीपत, नारनोल. और भुन भुनुं इन स्थानोंमें जा बसे और तबसे अगरवालोंने वैश्य वृत्ति धारणकी। बांकेलाल लिखते हैं कि समरजीतने अगरोहा लेकर धर्म सेनको बंगालमें राज करनेके लिये भेज दिया और बंगालके सेन और पाल इसी धर्मसेनके बंशज हैं। बंगालमें भी अग्रवालोंका राज्य था यह बात तो प्रत्यक्ष है क्योंकि नशीपुरका राज्य अभी तक वर्तमान है जिसका राजकुल अग्रवाल है।

अगरोहेके विध्वंसकी इन दो बातोंसे यह मालूम होता है कि अगरोहे पर पहली बार संवत् ७५८ में आक्रमण हुआ और यद्यपि बहाल, सिंहने लिखा है कि इसी समय अगरोहेके अधि-वसी वहांसे भाग कर कोल, पानीपत, नारनोल आदि स्थानोंमें जा बसे और उन्होंने वैश्य वृत्ति धारण करली तथापि यह भी प्रकट हो जाता है कि इसके पांच सौवर्ष बादतक अगरोहेकी अवस्था बहुत अच्छी थी क्योंकि संवत् १२५४ में शहाबुद्दीन घोरीने आकर इस नगरको लूटा था। मालूम होता है कि इसी समय अगरोहेका विध्वंस हुआ है और इसी समय अगरवाल अगरोहेसे भाग युक्त प्रदेश पंजाब और मारवाड़के भिन्न भिन्न स्थानोंमें जा बसे तथा खेती और वणिज व्योपारसे अपनी जीविका

निर्वाह करने लगे। संभव है कि इसी समयसे अग्रवाल वैश्य कहलाने लगे हों।

भारतवर्षके इतिहासमें वैश्योंके वाणिज्य पराक्रमको बहुत ही कम स्थान मिला है और इसलिये शहाबुद्दीन घोरीकी चढ़ाईके बादसे अग्रवालोंका इतिहास अन्धकार मय है।

जब मुगलोंका राज हुआ तब अग्रवालोंकी फिर बढ़ती हुई प्रथम मुगल सम्राट बाब्बरके बेटे हुमायूं के पश्चात् दिल्लीके तख्त-पर हेमचन्द्र नामक कोई बादशाह बैठा था ऐसा कहते हैं और वह अग्रवाल था। इसके पश्चात् अकबरने अग्रवाल बंशीय मधूशाहको अपना वजीर बनाया था। मधूशाही पैसा इन्हीं मधूशाहके नामसे चला था जो अब भी देखनेमें आता है।

इसके अपरान्त मुसलमान राज्यके सूर्यास्तके समय तक अग्रवाल जातिके किसी पुरुषका नाम इतिहासमें विशेष प्रसिद्ध हुआ दिखाई नहीं पड़ता। बंगालके इतिहासमें मुसलमानोंके रा-ज्यके अन्त समयमें जगत सेठका नाम विशेष प्रसिद्ध हुआ। ये जगत सेठ अग्रवाल थे और बंगालके नुवावके दरबारमें इनकी बड़ी प्रतिष्ठा थी। इन्हींके खान दानमें आधुनिक हिन्दीके आ-चार्य, प्रतिभा शाली लेखक और कवि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र हुए। भारतेन्दु हरिश्चन्द्रके बाद मारवाड़ी अग्रवालोंमें प्रसिद्ध धर्मात्मा सेठ गुरुसहायमल पोद्दार और सेठ सूरजमल झुनझुनुंवाले आदि अनेक प्रसिद्ध धर्मात्मा और दानी पुरुष हुए जिनकी कीर्ति चारो दिशाओंमें फैल रही है।

(७)

अग्ररोहा

अग्रवालोंके इतिहासमें अग्रसेनके बाद अगरोहेका नाम ही और सब नामोंसे अधिक प्रसिद्ध है। अग्रसेन मूल पुरुषका नाम था तो अगरोहा अग्रवालोंके केन्द्र स्थानका नाम था महाराज अग्रसेनके नाम पर ही यह बसा था। इसमें सन्देह नहीं। यह स्थान कई सौ वर्षतक अग्रवाल राजाओंकी राजधानी रहा है और अब भी इसके स्मृतिचिह्न बाकी हैं।

यह स्थान पंजाब जिलेमें हिसारके पास है। इसका नाम भी अभी वही है परन्तु अब यह एक साधारण ग्रामसा रह गया है और इसके आसपास प्राचीन राजधानो अगरोहेके खंडहर हैं जो कि तीन चार मीलकी लम्बाई और चौड़ाईमें दीख पड़ते हैं। इन खण्डहरोंमें यदि खोजकी जाय तो आशा है कि अग्रवालोंके प्राचीन इतिहास और अगरोहेके प्राचीन गौरवका परिचय करानेवाली बहुतसी सामग्री मिले।

महाराज अग्रसेनने स्वयं यह राजधानी बसायी या उनके बाद उनके पुत्रोंने इसे बसाया इसका निर्णय हम नहीं कर सकते पर इसमें सन्दे नहीं कि यदि अग्रसेनके समयमें प्रतापनगर और आगरा ये ही दो राजधानियाँ रही हों और अगरोहा बादको बसा हो तो अग्रसेनके ही किसी पुत्रने इसे बसाया होगा। यह भी संभव है कि प्रतापनगरका ही नाम अग्रसेनके समयसे अगरोहा

पड़ा हो, क्योंकि प्रतापनगरका स्थान निर्देश भी अभीतक नहीं हुआ है।

अगरोहेका जो वर्णन मिलता है उसके अनुसार यह राजधानी चार मील चौड़े और चार मील लम्बे क्षेत्रमें बसी थी। और यहां अग्रवाल ही बसते थे। जो लोग अगरोहेको देखकर आये हैं वे बतलाते हैं कि यहां कई बड़े बड़े महलोंके चिह्न मिलते हैं जिससे यह मालूम होता है कि अगरोहा अपने समयमें एक अत्यन्त समृद्धि शाली नगर था। राजधानी होनेसे समस्त राज्यकी सारी शक्ति और शोभा उसीमें एकत्र हुई थी यह कहनेकी आवश्यकता नहीं। कहते हैं कि यहां अग्रवालोंके एक लाख घर थे और सब धनी, मानी और धार्मिक थे। उनमें जातिका अभिमान था और धर्मका भाव परस्पर सहानुभूति थी। उनके द्वारपर आकर कोई भिक्षुक असन्तुष्ट और निराश हो कर नहीं लौटता था और अग्रवाल भाइयोंके विषयमें तो, उन्हें ऐसा अभिमान था कि अगरोहेमें किसी दीन दुखी अग्रवालका मिलना असंभव था। आज भी शिमला राजधानीमें दीन दुखियोंका मिलना असंभव है। पर शिमलेके इस वैभवमें और अगरोहेके उस वैभवमें आकाश पातालका अन्तर समझिये। शिमलेमें दीन दुखी नहीं हैं इसका कारण वहां दीन दुखियोंका प्रवेश ही नहीं है और अगरोहेमें दीन दुखी नहीं थे इसका कारण दीन दुखी वहां जाकर धनी और समृद्धिशाली हो जाते थे। अगरोहेमे एक लाख घर थे और वहां ऐसा रिवाज पड़ गया था कि यदि कोई गरीब भाई आजाय

तो घर पीछे एक एक रुपया उगाह कर वह गरीब लखपति बना दिया जाता था। यह काम आज किसी राजधानीमें देखनेमें नहीं आता। इसी कलकत्ता नगरीमें हजारो देश भाई ऐसे हैं जो सड़कोंपर सोते हैं और भीख मांग कर किसी तरह दिन काटते हैं! उन्हें कोई पूछता भी है? न सरकारको अपनी प्रजाका अभिमान है न प्रजाकी किसी जातिको अपने जाति भाईका! अंगरोहा आज खण्ड हर बन गया है। पर जब वह जीता जागता राजनगर था उस समय वहां बड़े बड़े प्रासाद ही नहीं थे जो दूरसे ही दीन दुखियोंके नेत्रोंको तुष्ट करके चले जानेका इशारा करते हों, बल्कि उन प्रासादोंमें दया धर्म शील लोग रहते थे जो अपने निर धन भाईको बैठनेके लिये स्थान, अहारके लिये अन्न और गृहकार्यके लिये धन देते थे। धनी होना उन्हींका सुफल है जो अपने भाईयोंको भी धनी और सुखी बनावें। अगरोहेकी यही शोभा थी!

अगरोहा सौभाग्यसंपदका निकेतन था। पर इसी सौभाग्य संपदनें सूएके मधुर कण्ठस्वरकी तरह उसके साथ दगाकी। सबसे पहले संवत् ७५८में धाराधिपति समरजीतने अगरोहेपर आक्रमण किया। अगरोहा वासियोंने उसका सामना किया पर अगरोहेके राजा धर्मसेन अपने धर्म और सेनासे अलग होकर पहलेसे ही समरजीतसे मिला था और "घरका भेदियां लंकादाह" के न्यायसे उसीकी बदौलत अगरोहेकी छातीपर समरजीत-सात देकर आया और अगरोहेको उसनें लूट लिया। यह कथा

पहले आ चुकी है। परंतु इससे भी अगरोहा बच गया था। शायद इसी समय अगरोहेका राज्यभी यह नष्ट हो गया और अग्रवालों के लिये केवल ५२ मुहाल की जगह ही रह गई।

इसके बाद लगभग ५ सौ वर्षतक अगरोहेके जीवनमें कोई विशेष घटना नहीं हुई। इस बीच भारतवर्षपर विदेशियोंके अनेक आक्रमण हुए पर मालूम होता है कि जिस महमूद गजनवीने हिन्दुस्थानपर १७ बार चढ़ाई की उसकी दृष्टिसे अगरोहा बच गया था। परंतु सन् ११६७ अर्थात् संबत् १२५४में शहाबुद्दीन घोरीने १ लाख २० हजार सेनाके साथ जब भारत पर चढ़ाईकी उस समय अगरोहेपर भी उसने धावा किया था और इसबार अगरोहा बच नहीं सका—उसका संपूर्ण विध्वंस हुआ और अगरोहेके अग्रवाल युक्तप्रदेश पंजाब और मारवाड़के भिन्न भिन्न स्थानोंमें जा बसे और वैश्यवृत्तिसे जीविका निर्वाह करने लगे।

अगरोहेकी इस तरह तीन अवस्थाएं दिखायी देती हैं। पहले राजधानी थी; फिर ५२ महालकी जागीर हुई और अब खण्डहर है। क्या यह खण्डहर अग्रवाल जातिको अपने पूर्व वैभवका स्मरण करा कर फिर पराक्रम करनेमें प्रवृत्त न करेगा?

गोत्र-समस्या

अग्रवाल जातिके १७॥ अथवा १८ गोत्र हैं। लोग कोई प्रकारसे इनका उच्चारण करते हैं। पर प्रायः सभी उच्चारण अशुद्ध है। शुद्ध रूपोंका निर्णय करना भी कठिन हो है। "अग्रवाल उत्पत्ति" लेखक इन गोत्रोंके शुद्धाशुद्ध नाम, वेद, शाखा, सूत्र

और प्रवर की तालिका ही है वह उसी लेखक की जिम्मेदारी पर यहां दिये देते हैं—

संख्या	गोत्र अशुद्ध	गोत्र शुद्ध	वेद	शाखा	सूत्र	प्रवर
१	गर्ग	गर्ग	यजुः	माध्यन्दिन	कात्यायन	५
२	गोयल	गोभिल	„	„	„	३
३	गोयन*	गौतम†	„	„	„	३
४	मीतल	मैत्रेय	„	„	„	३
५	ज़ीतल‡	जैमिन	„	„	„	३
६	सिंगल	शौंगल	साम	कौथमी	गोभिल	६
७	बांसल	वत्स्य	„	„	„	५
८	एरन	और्व	यजु	माध्यन्दिन	कात्यायन	३
९	कांसल	कौशिक	„	„	„	३
१०	कंछल	कश्यप	साम	कौसथमी	गोत्रिल	३
११	बुंगल(तुंदल)	तांडेय	यजुः	माध्यन्दिन	कात्यायन	३
१२	मंगल	मांडव्य	ऋक्	शाकल्य	आश्वलायन	३
१३	विंदल	वसिष्ट	यजु	माध्यन्दिन	कात्यायन	३
१४	ढेलन	धौम	„	„	„	३
१५	मुद्गल	मुद्गल	ऋक	शाकल्य	आश्वलायन	३
१६	टेरन	धान्याश	यजु	माध्यन्दिन	कात्यायन	३
१७	तायल	तैतर्य	„	„	„	३
१८	नागल	नागेंद्र	साम	कौथमी	गोभिल	३

* 'गोयन' को कहीं 'गौण' और कभी 'गोल्यण' भी कहते हैं।
† यह आमतौरपर 'जिन्दल' कहा जाताहै।
‡ यह 'तुन्दल' है, बुंगल नहीं।

१७॥ मानी गयी हों यज्ञ यद्यपि १७॥ हुए तथापि फल तो १८ ही यज्ञोंका हुआ। दूसरी बात यह कि गोत्र आधा कैसे हो सकता है? आधेका तो कुछ मतलब ही नहीं है। इसलिये १८ गोत्र ही मानने चाहिये।

ये १८ गोत्र महाराज अग्रसेनके १७॥ यज्ञोंसे हुए। गोत्र शब्दका अर्थ सन्तान है। और "वंश परंपरा प्रसिद्ध मादि पुरुष ब्राह्मण रूपं„ अर्थात् वंशके जो आदि पुरुष होते हैं उनके नामको 'गोत्र' कहते हैं और ये आदि पुरुष ब्राह्मण ही होते हैं। कारण सभी वर्णों के आदि पुरुष ब्राह्मण या ब्रह्मर्षि हैं। यथा :—

> जमदग्निर्भरद्वाजो विश्वामित्रात्रि गौतमाः ।
> वशिष्ठकाश्यपागस्त्या मुनियो गोत्रकारिणः ॥

जमदग्नि, भरद्वाज, विश्वामित्र, अत्रि, गौतम, वशिष्ठ, काश्यप, अगस्त्य आदि ऋषि ही गोत्रोंके प्रवर्तक हैं। गोत्रोंकी मूल संख्या २४ मानी गयी है। पीछे इसका और भी विस्तार हुआ है जिस कुलका जो गोत्र है वही वंश परम्परासेचला जाता है। महाराज अग्रसेनने सन्तानकी इच्छासे यज्ञ किये थे और इसलिये यही मालूम होता है कि उन यज्ञोंको ही उन्होने अपने पुत्र अर्पण कर दिये होंगे और उन यज्ञोंसे यह नयी सृष्टि मानी गयी होगी। यह तो स्पष्ट ही है कि यज्ञके ऋषियोंने अग्रसेनके पुत्रोंको 'गोत्र' दिये। धर्मशास्त्रमें यह व्यवस्था है कि ब्राह्मणेतर द्विजोंको ब्रह्मर्षि गोत्र" दान कर सकते हैं।

अग्रवालोंके पुरोहित

पुरोहितो हितो वेदस्मृतिज्ञः सत्यवाक् शुचिः ।
ब्राह्मण्यो विमला चारः प्रतिकर्ता पदामृजः ॥

हिन्दु जातिके किसी वर्ण या जातिका इतिहास उसके पुरोहित वर्गके इतिहासके बिना पूर्ण नहीं हो सकता क्योंकि समाजको शिक्षा देनेका काम ब्राह्मण पुरोहितोंके हाथमें रहा है और आज यद्यपि समस्त हिन्दू जातिके साथ ब्राह्मण जातिका भी अधःपात हुआ है तथापि एक समय था जब ब्राह्मण संसारके हितके लिये सारे सांसारिक सुखोंपर लात मारकर तपोवनमें तपस्या करते अथवा जन समाजमें रहकर "यद्रृच्छालाभ सन्तुष्ट" होकर समाजके हित साधनमें तत्पर रहते थे। इनका एक मात्र व्यवसाय अध्ययन अध्यापन और समाजकी व्यवस्था ही था। ये वेदों और स्मृतियोंको जानते थे, सदा सत्य बोलते थे और सत्यका ही आचरण करते थे इसलिये इनसे बढ़कर किसीका कोई हित नहीं था और इसीलिये ये पुरोहित कहलाते थे। हम जिस इतिहासका परिचय देनेका यत्न कर रहे हैं उसमें ब्राह्मणों की यही पवित्र और आदर्श अवस्था थी।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्रने जिन धनपालको महाराज अग्रसेनके पूर्वजोंका मूल पुरुष माना है उन धनपालको प्रताप नगरकी राजगद्दीपर ब्राह्मणोंने ही बैठाया था। ब्राह्मण स्वयं राज्य सुख नहीं भोगते थे, न राजकार्य स्वयं करते थे। वे क्षत्रियोंद्वारा ही

राज्य कराते थे और स्वयं केवल सात्विक उपदेश दिया करते थे। महाराज अग्रसेनके समय के १८ ऋषिकुलोंके नाम अबतक अग्रवालोंको याद हैं। महाराज अग्रसेनने सन्तान प्राप्तिके लिये जो यज्ञ किये थे वे इन्हीं १८ ऋषिकुलोंके आचार्य्योंने कराये थे। और उन्हीं आचार्य्योंके पास अग्रसेनके पुत्रोंने वेद वेदांग और धनुर्वेद धर्मशास्त्र और नीतिक शिक्षा पायी थीं। इतना ही नहीं बल्कि उन्हीं आचार्योंके नामसे समस्त अग्रवाल जातिके गोत्र भी वंश परम्परासे चले आते हैं और उन आचार्योंकी ब्राह्मण सन्ततिके भी वे ही गोत्र हैं। इस तरह अग्रवाल क्षत्रिय अथवा वैश्य जो कहिये उनसे और उनके पुरोहितोंसे परस्पर अविच्छिन्न संबंध है। यथार्थमें यह पहले गुरुशिष्यका संबंध था यद्यपि कालकी कुटिल गतिसे अब न अग्रवालोंकी वैसी अवस्था है न उनके पुरोहितोंकी ही, जैसी पहले थी।

अग्रवाल वंशके जब अच्छे दिन थे तब अपने पुरोहितोंके सम्मानके लिये उसने उन पुरोहितोंको गौडग्राम अर्पण किया था जिसे अब गुडगावां कहते हैं। अग्रवालोंके पुरोहित गौड ब्राह्मण ही होते हैं और उनके गोत्र भी यजमानके गोत्रसे मिलते हुए रहते हैं अर्थात् जिस यजमानका जो गोत्र होगा वही उसके पुरोहितका भी होगा। ये पुरोहित ही अग्रवालोंके सब नित्य नैमितिक कर्म कराते हैं। उनका यह अधिकार पहलेसे चला आता है और यह बड़ा पवित्र अधिकार है। परन्तु अब पुरोहित भी अपने आपको भूल गये हैं और उनके यजमान भी। इतिहासके

स्वच्छ जलमें अपना चेहरा देखनेसे शायद दोनोंको अपने सिंह रूपकी पहचान हो जायगी।

(१०)

रहस्यमय बातें

यों तो अग्रवालोंका संपूर्ण इतिहास ही रहस्यमय है। परंतु उससे भी कुछ न कुछ ऐतिहासिक तत्व मिल जाता है और इस तरह इतिहासका कुछ भाग हमने इस "अग्रवाल इतिहास परिचयमें देनेका प्रयत्न किया है। परंतु इसमें बीच बीचमें कुछ ऐसी बातें मिलती हैं जिनका आशय ठीक समझमें नहीं आता। ऐसी कुछ बातोंपर हम इस प्रकरणमें विचार करेंगे।

(१)

"एक समय नागलोकसे नागोंका कुमुद नाम राजा अपनी माधवी कन्याको लेकर भूलोकमें आया और उस कन्याको देख कर इन्द्र मोहित हो गया और नागराजसे वह कन्या मांगी। पर नागराजने इन्द्रको वह कन्या नहीं दी और उसका विवाह राजा अग्रसेनसे कर दिया। यही माधवी कन्या सब अगरवालोंकी जननी है और इसी नातेसे हम लोग सर्पोंको अबतक मामा कहते हैं।"

यह नागलोक कहां है और सर्प मामा कहनेका क्या मतलब है? नागशब्दका अर्थ पौरानिक परिभाषाके अनुसार तक्षक, कर्कोट आदि देवयोनि मनुष्योंसे है जिनके सिरपर सांपके फनके आकारकी जटा होती है। कहते हैं कि आसामके अबोर प्रदेशमें

अभी ऐसे लोग पाये जाते हैं और इससे यह अनुमान होता है। कि राजा कुमुद इसी तरफके किसी राज्यके राजा होंगे जो अपनी कन्याको व्याहनेके लियें अग्रसेनकी राजधानीमें आये थे। अग्रवाल जातिमें अब भी नागकन्याकी स्मृतिमें विवाहके अवसरपर वधूके सिरपर सांपके फनके आकारकी चुंडी बांधी जाती है और सांपको मामा कहनेकी जो प्रथा कहीं २ पड़ गयी है उसका आरंभ विनोदसेही हुआ होगा और इस समय विनोदमें ही उसकी गिनती है।

(२)

महाराज अग्रसेनके जो सन्तति नागकन्यासे हुई वह नागवंशी कहलायी। परंतु रहस्यकी बात यह है कि नागकन्यासे विवाहस्वयं अग्रसेनने कियाथा अथवा उनके पुत्रोंने। इस विषयमें राजवंशियों और नागवंशियोंमें बड़ा मतभेद है। और राजवंशियोंके हिसाबसे महाराज अग्रसेनके १८ पुत्र थे, उनके १८ ही गोत्र थे और वासककी १८ ही कन्याएं थीं। यह १८ का सिलसिला कुछ अस्वभाविकसा मालूम होता है नागवंशियोंके हिसाबसे राजा अग्रसेनने ही नागलोक (या अहिनगर) के राजाकी कन्यासे विवाह किया था और उसकी सन्तान नाग वंशी कहलायी। उपरानीकी सन्ततिके विषयमें क्या व्यवस्था हुई इसका कहीं उल्लेख नहीं ३।

अनूपसिंह राजवंशीने नागकन्याओंके संबन्धमें बड़ी विचित्र बात लिखी है, "वह दिनमें तो मनुष्यरुपसे और रातको सांपोंके रूममें रहती थीं। इसी कारणसे उनके पति दिनपर दिन निर्बल और मनमलीन रहते थे। जिस समय राजा अग्रने यह बात

निश्चय हुई, उन्होंने नागकन्याओंको उनके पिताके घर भेज दिया, और अपने पुत्रोंका दूसरा विवाह अन्य राजाओंकी कन्याओंसे कर दिया। नागकन्याओंके पिताने यह बात जानी कि सांपके रुपमें रहनेसे हमारी पुत्रियोंको हमारे घर भेज दिया है तब किसी युक्तिसे अपनी पुत्रियोंमेंसे रूप बदलनेकी शक्ति खींच ली और उनको महाराज अग्रके घर भेज दिया। उनसे जो संतान उत्पन्न हुई वह अगरवाल विशनीं कहलाई। यह शब्द विषनी है जिसका अर्थ विषके हैं।” यह बात बिलकुल बेसिर पैरकी है। “नाग” शब्दने ही यह किस्सा गढाया है। इसमें कोई ऐतिहासिक तत्व नहीं दिखायी देता।

(४)

राजवंशो “दस्से” कहलाते और नागवंशियोंसे उनका खनपान नहीं है यह भी एक रहस्यकी बात है। सुखानंद मालवी “आत्रे गोत्रसे राजाकी विरादरी” याने “राजवंशी” की उत्पत्ति मानते हैं परन्तु राजवंशियोंमें तो १८ गोत्र प्रचलित हैं। फिर राज वंशियोंके विषयमें जो अपवाद है उसका मूल क्या है?

(५)

महाराज अग्रसेन “प्रेत” की सहायतासे हरद्वार गये थे इसका कुछ समझमें नहीं आता।

(६)

अग्रसेन और इन्द्रका नाग कन्याके पीछे युद्ध हुआ। इसका अर्थ यह हो सकता है कि, नाग कन्या माधवीसे विवाह

होनेके पश्चात् अग्रसेनके राज्यमें अवर्षणके कारण बड़ा भारी दुर्भिक्ष पड़ा होतो। इन्द्रको वशमें करनेके लिये अग्रसेनने तपस्या की और महादेवजीने प्रसन्न हो कर कहा कि इन्द्रको वशमें करने की लिये महालक्ष्मीकी उपासना करो। आजकल रुपया होनेसे ही दुर्भिक्ष टल जाता है और न होनेसे फसल अच्छी होनेपर भी दुर्भिक्षसे सामना करना पड़ता है।

(७)

अग्रवालोंके १७॥ गोत्रोंका कारण १८ वां आधायज्ञ ही मालूम होता है। परंतु आधे गोत्रका कुछ मतलब नहीं है। इसलिये १८ गोत्र ही मानना चाहिये।

(८)

महाराज अग्रसेनको १८वें यज्ञमें हिंसासे ग्लानि हो गयी और ऋषियोंने भी उन्हें क्षत्रिय धर्म छोड़कर वैश्य धर्म ग्रहण करनेका उपदेश दिया, और अग्रवालोंके वैश्य होनेका यही कारण माना जाता है। परंतु अग्रसेनने भी राज पाटत्यागा नहीं था। इसलिए अग्रसेनको जिस वैश्य धर्मका उपदेश मिला उससे वैश्य धर्मका कुछ विशेष अर्थ मालूम होता है। शहाबुद्दि न घोरी द्वारा अगरोहेका विध्वंस होनेतक अग्रसेनके वंशज राजा और तालुकेदार ही रहे हैं। परंतु यह संभव है कि अग्रवालोंने बहुत पहलेसे ही व्यापार वाणिज्य करना शुरु कर दिया हो और जिससमय अगरोहेमें एक लाख घर लखपतियोंके थे उस समय अगरोहा व्यापारका ही एक बड़ा भारी केंद्र रहा होगा।

(११)

उपसंहार

पिछले परिच्छेदोंमें अग्रवाल जातिके इतिहासका जो कुछ परिचय मिला वह उसके क्षात्र जीवनका ही परिचय हैं। महाराज धनपालसे लेकर अग्रसेन तक और अग्रसेनसे धर्मसेनतक जिन जिन पुरुषोंके नाम आये हैं वे राज पुरुष थे और जिन घटनाओंका उल्लेख हुआ है वे राजकीय घटनाएं थीं। अग्रसेनके चरित्रमें एक जगह यह वर्णन आया है कि ऋषियोंने उन्हें वैश्य धर्म ग्रहण करनेका उपदेश दिया था कहा जाता है कि उस समय वैश्योंका अभाव हो चला था परन्तु अग्रसेनने वैश्य धर्म ग्रहण किया या नहीं और यदि किया तो वैश्य धर्मका कौनसा काम उन्होंने किया इसका कोई स्पष्ट निर्देश नहीं है। हां, जिस समय महाराज अग्रसेनके प्रथम विवाहके पश्चात् उनके राज्यमें अवर्षणके कारण बड़ा भारी दुर्भिक्ष पड़ा था उस समय वे राज्यका प्रबन्ध अपनी रानीको सौंपकर "इन्द्रको वशमें करनेके लिये" तपस्या करने काशीपुरीमें गये थे और वहां महादेवजीने प्रसन्न होकर उन्हें महालक्ष्मीकी उपासना करनेका उपदेश दिया था। तब महाराज अग्रसेनने महालक्ष्मीकी उपासना की और उन्हें प्रसन्न किया इस महालक्ष्मीकी उपासनाका हेतु धनोपार्जन हो और उपासनाकी क्रिया वैश्य कुलोचित वाणिज्य व्यापार हो तो अग्रसेनके चरित्रमें क्षात्र जीवनके साथ

वैश्यकर्मका भी मेल हुआ था, ऐसा कह सकते हैं। परन्तु हरिद्वारमें जाकर महालक्ष्मीकी उपासना करके लौट आनेपर महाराज अग्रसेनने अपनी राजधानीमें महालक्ष्मीका एक मन्दिर बनवाया था इस घटनाके अतिरिक्त वैश्य धर्म सूचक और कोई बात लिखी हुई नहीं मिलती। इसके पश्चात् भी जब महाराज अग्रसेन राज्य अपने युवराजको सौंपकर वानप्रस्थ हुए और राजपुत्र राज्य करने लगे तो उनके सम्बन्धमें भी किसीने यह लिखा नहीं है कि उन्होंने अमुक व्यवसाय किया था अथवा अमुक व्यवसाय करके लक्ष्मी प्राप्त की थी। बात यह है कि स्वयं राज्यकर्त्ता वाणिज्य व्यापार नहीं कर सकते; कमसे कम जिस द्वापर युगकी ये बातें हैं उस समय वैश्य वृत्ति युक्त राज्यपद्धति इस देशमें नहीं थी पर यह सम्भव है कि अग्रसेनके बाद उनके जो पुत्र राजगद्दीपर बैठे उनको छोड़ और पुत्रोंने वाणिज्य व्यापार किया हो। अथवा इन पुत्रोंके पुत्रोंने किया हो। कमसे कम जिस समय अगरोहेमें अग्रवालोंके एक लाख घर थे और ये सभी लक्षाधीश थे उस समय अगरोहा व्यापारका ही एक बड़ा भारी केन्द्र रहा होगा। इसमें सन्देह नहीं। भारतवर्षके इतिहासमें वाणिज्य व्यापारकी गतिको वह महत्व प्राप्त नहीं हुआ जो अन्यान्य विषयोंको प्राप्त हुआ है। इसलिये प्राचीन कालके किसी भी इतिहासमें व्यापारका इतिहास नहीं है और इसलिये आज हमें यह पता नहीं लगता कि अगरोहा जो राजधानी होनेके साथ व्यापारका इतना बड़ा केन्द्र था वह इस पदको किस क्रमसे प्राप्त हुआ—किस प्रकार

और किस क्रमसे अग्रवाल जातिमें व्यापारकी उन्नति हुई। परन्तु यह मानना पड़ेगा कि एक लाख लक्षाधीश अग्रवालोंके अगरोहे-का वर्णन जिस कालका है उससे बहुत पहलेसे अग्रवाल जाति व्यापारमें कुशल हो चुकी थी। परन्तु इस व्यापार कौशलका इतिहास छिपा हुआ है और हमें अकस्मात् इस घटनासे साम-ना करना पड़ता है कि अगरोहेके प्रभूत धन भण्डारका समाचार पाकर घोर वंशीय शहाबुद्दीनने उसपर चढ़ाई की और अगरोहे-का सब धन लूट कर उसका विध्वंस कर डाला। इस घटनाके पहलेका इतिहास मिलता है न बादका ही।

अगरोहेके विध्वंसके पश्चात् इतिहास लेखकोंने इतना ही लिखा है कि अग्रवाल वहांसे भागकर कोल, नारनौल, दिल्ली और झुनझुनू इन स्थानोंमें जा बसे और वैश्य वृत्तिसे अपना जीवन निर्वाह करने लगे। इसके पश्चात् क्या हुआ? इसके जवाबमें मुग़लोंके समय फिर अग्रवालोंकी बढ़ती हुई यह बतलाया जाता है। परन्तु इस बढ़तीका दृष्टान्त मधूशाहका वजीर होना ही बताया गया है कोई ऐसी घटना नहीं बतायी गयी जिससे अग्र-वालोंके तत्कालीन व्यापार जीवन पर कुछ प्रकाश पड़े और वह घटनाक्रम—वह वैश्य वृत्तिके विकासका क्रम हमारे सामने नहीं आता जो वर्तमान अग्रवाल वैश्य जातिका यथार्थ इतिहास है और जिसके कारण ही आज अग्रवाल वैश्य विशेषकर हिन्दू जातिमें सबके सिरमौर हैं।

वर्तमान सदा ही अतीतका परिणाम होता है। आज अग्र-

वाल जाति जो कुछ है वह आजतकके अपने कृताकृतका फलस्वरूप है। आज जिन मारवाड़ी अग्रवालोंको हम देखते हैं कि इस कौनेसे उस कौनेतक सर्वत्र फैले हुए हैं और प्रयः प्रत्येक स्थानका व्यापार अपने हाथमें रखे हुए हैं उन्हें यह व्यापार कुशलता एक दिनमें नहीं प्राप्त हुई है बल्कि इसके पीछे कई शताब्दियोंका इतिहास है। उसी प्रकार अग्रवालोंके शुद्ध आचार विचार, धर्म परायणता, परिश्रम शीलता और साहस आदि गुणोंकी जो प्रशंसा है उसके पीछे भी कई शताब्दियोंका इतिसाह है—कितानों ही पुरखोंका संचित किया हुआ पुण्यबल है।

इस इतिहास अथवा पुण्यबलका वर्णन किसी विशेष ग्रन्थमें किया हुआ नहीं है तथापि अग्रवाल जातिकी वर्तमान अवस्था और इतिहासोंमें मिलनेवाली दो एक बातोंके आधारपर यह अनुमान किया जा सकता है कि राजा धर्मसेनके समयके लग भग अग्रवाल जातिमें वैश्य धर्म प्रधान हो गया था। यह वह समय था जब अगरोहेके राजा नहीं बल्कि एक जमीदार थे और ५२ महालकी जागीर उनके थी। इस समय अगरोहेका वैभव भी बहुत बढ़ाचढ़ा था और राजा ही धनी नहीं थे बल्कि अगरोहेके सभी अधिवासी धनी थे। इस समय अग्रवालोंको व्यापार करनेका पूरा अवसर था और इसीसे उन्हें धनभी प्राप्त हुआ होगा इनकी आपसकी फूटके कारण धनराधिपति समर जीतको चढ़ाई करनेका मौका मिला और उसने अगरोहेको लूटा। परंतु इससे अगरोहेको कोई भारी धक्का न लगा होगा, क्योंकि राज्य

परिवर्तन होनेपर भी अगरोहेके लोग अगरोहेमें ही थे और वे फिर पूर्ववत व्यापार आदि करने लगे और ५ सौ वर्ष व्यापारका यह केन्द्र बना रहा। शहाबुद्दीन गोरीके आनेपर इस केन्द्रका विध्वंस हुआ और अगरोहेके अग्रवाल वहांसे चारो देशाओंमें फैल गये। इस महान् संकटसे यह लाभ हुआ कि अग्रवालोंका देशदेशान्तरमें जाकर अपना घर कायम करने और व्यापार करनेका साहस बढ़ गया, खासकर उन अग्रवालोका जो मारवाड़में जा बसे क्योंकि अगरोहेसे निकल कर ये लोग मारवाड़में आये तो मारवाड़की निर्जला भूमिने इनका व्यापार निमित्तक साहस और भी बढ़ा दिया। सात शताब्दियां उस बातको हुए बीत चुकी हैं। बीचमें कितने ही राज्य परिवर्तन हुए पर मारवाड़ी अग्रवालोंमें कोई परिवर्तन नहीं हुआ। वे क्रमशः भारतके सब प्रान्तोंमें फैलने लगे और आज हम देखते हैं कि हिन्दुस्थानमें कोई बसती ऐसी नहीं है, जहां मारवाड़ी अग्रवाल न बसा हो। अफगानिस्तानसे लेकर आसामतक और नैपालसे लेकर लंकातक जितने स्थानिक व्यापार हैं वे प्रायः मारवाड़ी अग्रवालोंके ही हाथमें हैं और इस कलकत्तेमें जो व्यापारमें हिन्दुस्थानका प्रधानकेन्द्र है, अंग्रेजोंके बाद मारवाड़ी अग्रवालोंका ही नंबर है। इस प्रकार अपने घरका मोह छोड़कर दूर दूर स्थानोंमें व्यापारके निमित्त जा बसनेका यह साहस आजका नहीं है, यह कमसे कम ७ सौ वर्षका अभ्यास है। इसके साथ मारवाड़ी अग्रवालोंमें जो व्यापार कौशल है, परिश्रम

शीलता और सहिष्णुता है वह भी सात सौ वर्षके अभ्यासका फल है।

परंतु इससे कोई यह न समझे कि मारवाड़ी हिन्दुस्थानके यहूदी हैं जिनका एक मात्र व्यवसाय धन खींचना हैं और कुछ नहीं। मारवाड़ी अग्राल व्यापारमें जितने चतुर हैं उतने ही वे दानवीर धर्मपरायण भी हैं। मारवाड़ियोंकी धर्मशालाएं और गौशालाएं तथा छेत्र आदि सर्वत्र प्रसिद्ध हैं। प्रायः प्रत्येक तीर्थ क्षेत्रमें धर्मशालाएं मौजूद हैं और गोरक्षाके काममें मारवाड़ियोंने जितनाधन खर्च किया है उतना और किसी जातिने नही बल्कि यह कहना चाहिये कि जबसे गोवध आरंभ हुआ है तबसे अबतक उसका प्रतिकार यदि किसीने कुछ किया है तो मारवाड़ियोंने ही किया है। इस उपायसे गोवध बन्द नही हुआ यह सही है; पर मारवाड़ीयोंने गौशालाए. चलाकर गौके प्रति आपते पूंज्यय भावकी जो रक्षा की हैं। उतनीभी और किसी जातिने नहीं की है। शायद ही कोई ऐसी गौशाला हो जिसमें मारवाड़ियोंका धन न लगा हो। पर यह धर्म परायणता और दानवीरता भी पूर्वपुरुषोंका ही पुण्य बल है। अग्रवालोंका जिस समय राज्य थी उस समय धर्मके लिये उन्होंने अपने कुल पुरोहितोंको ग्राम भी दिया था;* आज राज्य नहीं है, थोड़ा धन है तो धन ही दे रहे हैं। अग्रवाल जातिका खानपान, रहन सहन और

---

*अग्रवाशी राजाओंने अपने पुरोहितोंको गोहग्रामका प्राधिपत्य वर्णन किया था।

रिवाज भी शुद्ध पवित्र और शिष्ट संमत ही रहता आया है, यद्यपि अब चाल कुछ बिगड़ने लगी है।

जैसे वर्त्तमान अतीतका पर्यवसान है वैसे ही भविष्य वर्तमान का फल है। आज अग्रवाल जातिको व्यापार कुशल, परिश्रम शील, साहसी धर्मपरायण और दानशूर कहलानेका जो गौरव प्राप्त है वह अतीतके इतिहासका उपसंहार है अथवा अपनी प्राचीन विचार पद्धतिके अनुसार कहें तो पूर्व पुरुषोंके पुण्यबल फल है। उसी प्रकार आज हम जो कुछ कर रहे हैं या आगे करेंगे उसीका फल हमारी सन्ततिको भविष्यमें प्राप्त होगा। इतिहासका यही काम है कि वह भूतकालकी गतिका ज्ञान करा कर भविष्यकी प्रगतिका मार्ग दिखावे। यहांतक हमने भूतकाल की गातिका परिचय पाया, अब वर्त्तमान को देख कर आगे बढ़नेके उपाय सोचें।

वर्तमान अवस्थाकी अच्छी बातोंका उल्लेख ऊपर हो चुका है और उनकी रक्षा करना परम धर्म है। परन्तु अब चाल क्या बिगड़ने लगी है वह भी देखना चाहिये क्यों किउन्नतिकारास्ता यही है कि जो दोष हो उन्हें दूर करें। सबसे पहली बात यह देखनेमें आती है कि क्या अग्रवाल वैश्य और क्या उनके पुरोहित धर्मकर्मकी शिक्षासे वंचित रहते हैं। अगले समय में क्या था और अब क्या हो गया है। जिन पुरोहितोंने अग्रसेन के पूर्व पुरुष धनपालको प्रतापनगरकी राजगद्दीपर बिठाया था, जिन्होंने अग्रसेनके पुत्रोंका गोत्रसे संस्कार कराया था, जो

ऋषि कहलाते और ऋषि कुलोंमें द्विजोंकी सन्तानोंको वेद-वेदान्त, धनुर्वेद और व्यवसाय-शास्त्र पढ़ाते थे और स्वयं निःस्वार्थ रहते थे आज उनकी यह क्या दशा है कि मुट्ठी भर दानके लिये दीन हो कर अधम वृत्ति स्वीकार किये हुए हैं! जो पुरोहित पत्नी गुरुमाता कहलाती थीं आज वह पैसेके लिये पैसे वालीके पैरमें मेंहदी लगानेका धन्धा करती है! जो विधवा ब्राह्मणी पतिके साथ सती हो जाती या वैराग्य वृत्ति धारण कर पतिके ध्यानमें अपना शेष जीवन उत्सर्ग करती थीं आज उन्हें कहीं परिचारिका, कहीं विश्ववार्ता वाहिका और कहीं जारदूतिकाके रूपमें देखकर किस हिन्दूका हृदय शतशः विदीर्ण न होगा? धर्मही समाजका आधार है—सदाचार ही समाजकी सत्ता है। क्या अग्रवालोंके पुरोहित इस नरकसे अपने को और अपने साथ अग्रवाल जातिको जिनेसे बचानेका प्रयत्न नहीं करेंगी? समाजमें व्यभिचारका प्रवेश हुआ है और यह पहली बात है कि जिसका सबसे पहले प्रतिकार होना चाहिये। दूसरी बात शिक्षाकी अग्रवाल और उनके पुरोहित दोनोंको ऐसी मिलनी चाहिये कि वे सद्धर्म और सदाचारमें पक्के हों और अपने कर्ममें प्रवीण हों। पुरोहितोंकी फिर ऐसी अवस्था होनी चाहिये जैसे पहले थी अर्थात् वे इस योग्य हों कि समाजको रास्ता दिखा सकें और वैश्य सन्तानोंको ऐसी शिक्षा मिलनी चाहिये कि वे सदाचार सम्पन्न होकर व्यापारमें कुशल हों। आजकल अग्रवाल सन्तानमें चटक मटक, दुर्व्यसन और विला-

सिता पुरी मात्रामें आ गयी है। इसका कारण सदाचारकी शिक्षका अभाव है। इसके लिये वर्त्तमान शिक्षालय उपयुक्त नहीं हैं, स्वतन्त्र शिक्षालयोंका बनाना अत्यन्त आवश्यक हो गया है। बालकोंको शिक्षा ५ वर्षसे दस वर्षकी अवस्था तक निशुल्क पाठशालाओंमें देनी होगी और १० से १६ वर्षकी उम्रतक स्वतन्त्र जातीय विद्यालयोंमें अनिवार्य करनी होगी। इसके साथ ही साथ विद्यार्थी गृहस्थापित करना होगा। वर्त्तमान समयमें काम चलानेके लिये यही गुरुकुल यही ऋषिकुल माना जाना चाहिये। जबतक ऐसी व्यवस्था न हो तबतक वास्तविक शिक्षाका प्रचार कठिन है।

अब इसके बाद सोचनेका यह विषय है कि व्यापारमें हम लोगोंको और आगे किस तरह बढ़ना चाहिये। यह स्मरण रहे कि क्या व्यक्ति और क्या जाति, सबकी यही गति है कि जो आगे नहीं बढ़ता उसे पीछे हटना पड़ता है। सात सौ वर्षसे हमलोग आगे बढ़ रहे हैं पर अब आगे बढ़नेकी गति अंगरेजी मालकी दलालीमें ही रुक गयी है। यह पीछे हटनेका है जो ठीक नहीं और देशका अनाधन विदेशियोंको बटोरकर दे देते हैं। इसलिये हमलोगोंको व्यापारमें आगे बढ़नेके लिए नये उपाय बराबर करते रहना चाहिये। हिन्दुस्थानके अन्दर ही कितने ही ऐसे व्यवसाय हैं जो लाभके साथ किये जा सकते हैं। परंतु हम एक खास व्यवसायकी ओर ध्यान दिलाना चाहते और वह व्यवसाय "कृषिगोरक्ष वाणिज्यं वैश्य कर्म स्वाभावजम्"में से

ही एक है और जिससे देशका बड़ा उपकार होनेवाला है। विदेशी कम्पनियोंको गुमास्ते यहां आकर इस देशका। अन्न बटोर ले जाते हैं और यहाँ शुकाल में भी अकाल पड़ता है

यदि हम लोग भारतके प्रत्येक प्रदेशका वह अन्न जो जहां पर्याप्तसे अधिक है। खरीद लिया करें और जब जैसा मौका हो अत्यास्त्यधिक लाभ लेकर बेचें तो लाभकी द्रष्टिसे यह बहुत अच्छा होगी और देश कार्यकी द्रष्टिसे तो इससे बढ़कर उपकारका साधन हमारे पास दूसरा हो ही नहीं सकता। इसी मेलका दूसरा काम दूधका व्यावसाय है। परंपरा गत धर्म विचारके अनुसार गोरस बेंचना पाप कहा जाता है। परन्तु इस समय तो यह गो रक्षामें परिणत हो गया है। कलकत्ता जैसे बड़े शहरोंमें ग्वालोंके हाथसे उनके द्वारा यह व्यवसाय कराया जा सकता है। इससे बड़ा भारी काम हो। इस समय देशमें कपड़ेकी मिलोंके अभावसे बड़ा कष्ट हो रहा है। इसलियेचर्के करघेआदि प्राचीन कामोंका प्रचार करना बहुत हो आवश्यक प्रतीत होता है। इधर भी ध्यान देना जरूरी है। इस तरह ये तीनों काम यदि मारवाड़ी अग्रवाल अपने हाथोंमें कर लें तो हम कह सकते हैं कि पूर्व पुरुषोंका पुण्यबल हमने आगे और बढ़ाया, घटाया नहीं।

अग्रवाल जाति का इतिहास परम उज्ज्वल है जिसका कुछ परिचय इस पुस्तकमें दिया गया है। भावी इतिहास इससे भी अधिक उज्वल होना चाहिये। प्राचीन इतिहासका पूरा परिचय

हम नहीं दे सके हैं यह काम बहुत श्रम और समयसे ही साध्य होनेवाला है हमें यह आशा है कि, जो कुछ परिचय हम दे सके हैं उसको अग्रवाल जातिके इतिहासकी जिज्ञासा बढ़ेगी और लोग इस काममें अग्रसर होंगे। भविष्यकी गतिके लिये भी संक्षेपतः हमने कुछ संकेत किये हैं और हमें आशा है कि इन संकेतोंके अनुसार अग्रवाल जातिकी शिक्षा, दीक्षा और व्यापारिक उन्नतिकी कोई कार्य्य पद्धति शीघ्र ही अमलमें लाई जायगी।

॥ इति शुभम् ॥